सहजानंद चरित्र

लेखक
प्रो. रमेश म. दवे

प्रकाशक
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004
SAHAJANAND CHARITRA (Hindi Edition)
(Life sketches of Lord Swaminarayan)

By Prof. Ramesh M. Dave

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by
Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:
Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:
SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

2nd Edition:
March, 2009. Copies: 4,000 (Total Copies: 7,000)

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith
This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material
from this book cannot be used without due acknowledgement to
Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any
reprints the written permission of the publishers is necessary.

IBSN: 81-7526-171-4

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material
from this book cannot be used without due acknowledgement to
Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any
reprints the written permission of the publishers is necessary.

Prasad: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:
Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:
SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

2nd Edition:
March, 2009. Copies: 4,000 (Total Copies: 7,000)

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith
This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material
from this book cannot be used without due acknowledgement to
Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any
reprints the written permission of the publishers is necessary.

IBSN: 81-7526-171-4

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material
from this book cannot be used without due acknowledgement to
Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any
reprints the written permission of the publishers is necessary.

Prasad: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:
Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:
SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

2nd Edition:
March, 2009. Copies: 4,000 (Total Copies: 7,000)

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith
This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material
from this book cannot be used without due acknowledgement to
Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any
reprints the written permission of the publishers is necessary.
कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृति तीम्र गति से विश्वसूत होती जा रही है। इस प्रवृति से जुड़े युवकों को आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रवृत्तित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोधासासनवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवकों को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्देश्यित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुरुखुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन-भिन भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परिक्षाएं आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रभावपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक
जय श्री स्वामिनारायण।
शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुखस्वामी महाराज)
निवेदन

परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्सवमनारायण भगवान स्वामिनारायण ने इस पृथ्वी पर आकर अनंत दिव्य चरित्र किये हैं। इन अपर चरित्रों का सम्पूर्ण वर्णन करना मुश्किल है - असम्भव है। फिर भी ‘चन्द्रयम चरित्र’ एवं ‘नीलकंठ चरित्र’ के बाद, अब श्रीजीमहाराज ने धर्मधुरा धारण की तब से लेकर देहत्याग तक के चरित्रो का संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक के द्वारा आपके समक्ष रखने का हाम यह अत्यन प्रयास है।

पुस्तक की रचना एवं प्रसंगो का चुनाव प्रायः निदेशत की हुई निम्नोक्त कक्षा की लक्ष्य में रखकर किया गया है। (1) खास खास जाने योग्य अन्यायस्क प्रसंगों को इसमें स्थान दिया है। (2) ‘सत्संग शिक्षण परीक्षा’ के अभ्यासक्रम में सुचित अन्य शिक्षणसंग्रहों में जिन प्रसंगों का विस्तृत निरूपण किया गया है, ऐसे कुछ प्रसंगों का निर्देश यहाँ नहीं किया गया है। और कुछ आवश्यक प्रसंगों का अतिसंक्षेप भी करना पड़ा है। (3) इस पुस्तक में जो भी लिखा गया है, वह सम्प्रदाय के प्रचलित एवं सर्वसामान्य ग्रंथों का आधार लेकर लिखा गया है, उन ग्रंथों की सूची इस पुस्तक के अंत में दी गई है। (4) सम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा रचित-उपलब्ध ग्रंथों में भी कुछ चरित्रों, साल-तिथियों और प्रसंगों के निरूपण में पाठभेद मिलता है; ऐसी स्थिति में समानार्थ निरूपित प्रसंगों एवं परम्पराग्राह्य के सम्बन्ध में सुनाई देते प्रचलित निरूपणों को प्राधान्य दिया गया है। (5) प्रसंगनिरूपण में स्थान और काल का क्रम ध्यान में रखा है, शायद ही कहीं अपवाद हो। ‘पादरी’ में दी हुई साल-तिथियों सम्प्रदाय के प्रसादीकुष्ठ स्थानों के शिलालेखों एवं मान्य ग्रंथों में मिले हुए सकेंगे पर आधारित हैं। (6) ये साल-तिथियों ‘हालारी पंचंग’ के अनुसार हैं। विक्रम संवत का हालारी चर्च आयाह जुलाई १ से लेकर ज्येष्ठ कृषि अमावस्या तक का माना जाता है। श्रीजीमहाराज के ‘वचनमूल’ एवं ‘हरिलिलामूल’ में इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है।

सत्संग शिक्षण परीक्षा के अभ्यासक्रम के एक अंश के रूप में इस पुस्तक की रचना की गई है। ‘सत्संग परिचय’ परीक्षा के लिए रचित यह पुस्तक आपके करकमलों में रखते हुए हमें प्रसन्नता होती है। मूल गुरुरती पुस्तक का यह हिंदी अनुवाद अक्षरनिवासी श्री योगेन्द्र प्रकाशजी ने किया है। हम उनके आभारी हैं।

भगवान स्वामिनारायण, गुणातीतानंद स्वामी एवं प्रकट गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज को प्रसन करने के लिए सभी सत्संग बालक, युवक एवं जिजासु इस अभ्यासक्रम को तैयार करके सत्संग की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके उच्च प्रमाणपत्र प्राप्त करें, यही अभ्यर्थना।

- संपादक मंडल
ठम नभी नवामी के बालक, मद्वेबो नवामी के लिए।
ठम नभी श्रीजी के बुवक, लडेजो श्रीजी के लिए।

नती डनते नती कहते, ठमानी जान की पुवाण।
ठमें है भय नती किनृगीने, जत्तमे है मृत्यु के लिए।
ठमने है यह आमें, आदा बलिदान ठम देंजे।
ठमाना आहनपुरुषपतम, गुणानीत गाण के लिए।
ठम नभी श्रीजी की अंताण, अहन में वान्य ठमाना है।
नवधनभी भवतुत नमाई है, अब ठमें शाय किनृग के लिए।
मिले हैं मोती-मे नवामी, दुःठम पुरूषायक अभी।
प्रगठ पुरूषपतम पाये, झरू ने मुक्ति के लिए।
अनुक्रमणिका

[1] स्वामिनारायण का भजन (2) श्रीहरि का कठोर धर्मांचरण (4) सत्संग का प्रचार और रघुनाथदास का उपद्रव (5) नरक के कुण्ड खाली किये (6)

[2] मगनीराम से अध्यादेश (8) रामचंद्र सेठ का निधन (13) समाधि प्रकरण (14) लोज में अनकृत्र उत्सव (16) मुक्तनन्द स्वामी के भ्रम का निवारण (16) दो स्वरूपों में दर्शन (19) फकोर को सत्संगी बनाया (21)

[3] सदावर्त की प्रदूषण (22) दूध से मीठी छाँ (23) सुन्दरजी बढ़ई की परिक्षा (24) मूलजी सेठ की शक्ति (26) रघुनाथदास सत्संग से विविध (27) लालजी बढ़ई को दीक्षा दी (28)

[4] कौरियाणी और गढ़ड़ में पथरावनी (30)

[5] कल्पत भव एवं वहम से मुक्ति (31) चारुदेवनारायण की प्रतिष्ठा (34) अच्छे पदार्थों का (35)

[6] मूलराम की व्यस्मुक्ति (36)भट्टजी की उलझन मिटाई (37) बालहत्या बन्द करवाई (38) सतीप्रसा का अन्त (41) परमहंस दीक्षा (42)

[7] मूलजी भक्त की माहिमा (43) अद्वैत को दीक्षा (45) हिंसामय यज्ञ का खंडन (46) ब्रह्मचारी को साथ बैठाया (47) स्वयं पालन करके फिर पालन करवाया (48) साधुओं की कठिन परिक्षा (49) गाजर मेरी बैसन (52) पठान का निवारण (53)

[8] पृथ्वी के मुख से वेद-पाठ (54) संस्कृत पढ़ने की आज्ञा (55) जेलपुर में हिंसामुक्त यज्ञ (57) माणकी का सवार (59) लोलंगर का उपद्रव (63) जगजीवन का अन्त (64)

[9] सबका कल्याण करना है (65) डाभान का यज्ञ (67) ‘हम पर दयारिखिए’ (68) कृपासह्य श्रीजीम्हाराज (69) समर्थनी (71)

[10] धर्म भक्ति के दर्शन (71) श्रीहर्ष का आँखें गई (72) मूलजी सेठ की पल्लि को दूषित का दान (74)

[11] जीवाखचर की परीक्षा (75) पवित्र वाणी का नियम (77) अकाल की भविष्य वाणी (78) मोक्ष की विद्या (79) अश्लीलता बन्द करवाई (81) गुणलीत की महिमा (83) नवाब का निवारण (85)

[12] संवत 1869 के वर्ष में अकाल (87) अकाल ने बिदा ली, सुकाल आया (88)

[13] जालिया में बीमारी ग्रहण की (88) कबूतर के कबूतर (91)
[14] गरीबनिवास (92) भगवान की गद्दी (94) धर्मपुर में पधारक मो (95) ‘सबको वृथा अखण्ड और शुद्ध बनाओगा’ (96) बारह स्वरूपों में दर्शन (97)
[15] साधुओं के आचरण की रीति (98) बुरा स्वभाव छोड़ना (99)
[16] लग के अश्लील गीत गाते करवाये (100) बच्चे को प्रसन्न किया (100)
[17] ब्रह्मांडाचार्य की पराजय (101) अहमदाबाद में पुनः प्रवेश (102) आरंभ में अपमान (105)
[18] सदृश बनायें (107) साधुधर्म समझाया (111) शिशुपाटल प्रभु (112)
[19] सहजातन्द्री होना चाहिए (112)
[20] श्रीहरि के प्राकृतिक चुंबन के छ: हेतु (113) लोमी में शाकोसव (115) भाइयों का मिलन (116) पंचाल में बोधारी (117)
[21] अपना वृत्तान्त (119) नरमार्यण देव की प्रतिष्ठा (121) ‘हमको कैसा कहेंगे?’ (124) बंदर ने माला घुमाई (124) सहजातन्द्री सूचि (125)
[22] भूज में मूर्तिप्रतिष्ठा (126)
[23] हमारा जड़भरत (127) धर्मकुल से मिलन (128) ‘यह कोई नहीं चंदन है’ (129)
[24] बरतल में लख्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा (130) सूरत में पधारक (130) विशाख रेंजनाल्ड देबर से भेंट (133) द्वारिका को गोमती बरतल में (136) सीसहाट के मंदिर (138)
[25] नृत्य मंदिरों का प्रारंभ (141) शूरवी को दिजल्व दिया (142) ‘शिक्षाप्रति’ (143) धोलरा में मूर्तिप्रतिष्ठा (145)
[26] महानाव की नियुक्ति (146) ‘हमारा अक्षरधाम’ (147) ‘शिक्षाप्रति’ का उल्लंघन मत करना (148)
[27] संतों को जूते पहनाये (149) जूनागढ़ के मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा (149) स्वामिनारायणिया (150)
[28] गहुपुर में मूर्तिप्रतिष्ठा (150) भावनगर में पधारक (151) गुण गহण की प्रेरण (153)
[29] अपनी छाप बनवाई (154) गवर्नर ज्हौं मालकम से भेंट (155) अनिम दिन... (157) प्रतिष्ठा लिखाई (159) ‘हमें स्वस्थ होना है’ (160) काबाहाई को दर्शन (161) ‘मोढा बहाला केम विरंधहै?’ (162) स्वधाम गमन (164) ‘मैं तो आप में अखंड रहा हूँ’ (165) भगवान स्वामिनारायण का पृथ्वी पर निवास (167) ग्रन्थसूचि (167)
पूर्ण पुरुषोत्तमनारायण भगवान श्री स्वामिनारायण
ग्रन्थ प्रवेश

भारतभूमि में संवत् 1837 (सन् 1781) चैत्र शुक्ला नवमी के दिन धर्मदेव और भक्तिमाता के घर बालक घनस्याम का जन्म हुआ। पृथ्वी पर एकाशिक धर्म की स्थापना करने, अनन्त जीवों को मोक्ष देने और अपने भजनों को सुख देने के लिए करण करने पर ब्रह्म पूर्वोत्तम पृथ्वी पर साक्षात् प्रकट हुए। अपने माता-पिता को उन्होंने सुख दिया। बालमियों के साथ दिव्य चरित्र भी किये। कालीदत्त जैसे असुरों का विनाश किया। आठ साल की उम्र में उन्हें यज्ञोपवीत दिया गया। सकल शास्त्रों का अध्ययन उन्होंने बहुत कम समय में पूर्ण किया। दस साल की छोटी उम्र में काशी के पंडितों की सभा में जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म इन पाँच अनादि भेदों का सिद्धांत प्रतिपादित किया। अपने माता-पिता को, अन्तकाल में अपने मूल स्वरूप का परिचय कराया और उन्हें दिव्य गति दी। संवत् 1849 (सन् 1793) की आपात शुक्ला दशमी के दिन उन्होंने गृहत्याग किया।

हिमालय में सर्दी, गर्मी, बरसात, भूख, प्यास सहकर केवल कौन्पीन धारण कर खुले शरीर और नंगे पैर पैदल विचरण किया। पुलहार्षम में चारुमास के दिनों में कठोर तपश्यां की और सूर्यनारायण को प्रसन किया। उन्होंने गोपाल योगी से अष्टांगयोग सिद्ध किया तथा उनको दिव्य गति दी। नौ लाख योगियों का कल्याण किया। अनन्त जीवों का उद्धार करते हुए, उत्तर, पूर्व और दक्षिण के तीर्थों में विचरण करते हुए वे सोराष्ट्र में संवत् 1856 (सन् 1800) की श्रावण कृष्ण पक्षी के दिन गुजरात में जूनागढ़ जिले के लोज गौँ में पहुँचे। वहाँ रामानन्द स्वामी के आश्रम में मुक्तानन्द स्वामी के साथ निवास किया। दस महीने के बाद पीपलाना गाँव में उनकी
सहजानंद चरित्र

रामानंद स्वामी से प्रत्यक्ष मुलाकात हुई। उन्होंने रामानंद स्वामी को अपना गुरु बनाया। गुरु रामानंद स्वामी ने संवत् 1857 (सन् 1801) की कार्तिक शुक्ला प्रवोधिनी एकादशी के दिन घनस्याम या नौलकण्ठ ब्रह्मचारी को स्वामी सहजानंद नामाभिधान करके भागवती दीक्षा दी।

[1]

स्वामिनारायण का भजन

आ. संवत् 1858 (सन् 1802) मार्गशीर्ष जयोदशी को श्री रामानंद स्वामी ने जूनागढ़ जिले के फणेणी गाँव में देहत्याग किया। सारे भक्तजन शोक सागर में डूब गये। परंतु सहजानंद स्वामी ने संप्रदाय की धुरा संभालते हुए मुक्तानंद स्वामी के साथ श्रीमद भगवदगीता की कथा आरम्भ करवाई, जो दस दिन तक चली।

कथा में श्रीहरि स्वयं अपने सिद्धांतों का संदर्भ निरूपण किया। ग्यारहवें दिन कथा-पारायण की पूर्णस्वत हुई। विधिपूर्वक गुरु की सम्पूर्ण श्रावकिया संपन्न की गई। ब्राह्मणों को दानदक्षिणा दी गई और सबको भोजन करवाया गया।

चौथवाँ दिवस हुआ। संवत् 1858 (सन् 1802) मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी के दिन सभी हरिभक्तों ने सहजानंद स्वामी को आग्रहपूर्वक एक अलग सिंहासन पर बिठाया। उनके साथ मुक्तानंद स्वामी और आंश्रम के सभी संत बिराजमान हुए। भक्त समुदाय के पीछे और कुछ दूर स्त्रियाँ ने भी अपना स्थान लिया।

उस समय सहजानंद स्वामी ने धर्मशास्त्रों के आधार पर धर्म-नियमों का उपदेश देते हुए कहा, ‘श्री रामानंद स्वामी ने मुझे अपने स्थान पर बैठाया है, इसलिए गुरु के साथ से आप सभी के हित की कुछ बातें बता रहा हूँ। आप सभी हमारी इन बातों को ध्यान से सुनें और अपने जीवन में आत्मसात करने का प्रयास करें।’

1. श्रीजीतमहाराज के जन्म से लेकर उन्होंने धर्मधुरा धारण की तब तक के लोकों के चरित्रों के चित्रण क्रम से ‘घनस्याम चरित्र’ एवं ‘नौलकण्ठ चरित्र’ नामक पुस्तिकाओं में कर दिया गया है।
‘त्यागी साधुओं को चाहिए कि वे सत्य, दया, तप, धर्म, विविधता, ध्यान, श्रवण, शास्त्रों का नियमित पाठ, सेवा, त्याग, जितेन्द्रियता, आत्मनिर्भरता आदि सदृश धारण करें।’

‘त्यागी और गृहस्थ – सारे हरिकाओं को चाहिए कि वे भगवान की भक्ति करें। मेद्ध्वान, मांसाहार, जीवहंस, चोरी, आत्महत्या आदि दोषों से बचें। किसी पर कलाक कर न लगाएं। देव-निन्दा न करें। विमुख व्यक्ति के मुँह से कथा न सुनें और अनुचित खानपान न करें।’

‘गृहस्थ शास्त्रों के आदेशानुसार सोलह संस्कार विभिन्नरूप संपन्न करें।
गृहस्थर्म का परिपालन करें। वेद, ब्राह्मण, सन्त, पतित्रता एवं विद्वान का आदर करें। दान, धर्म और नीति का पालन करें। अहिंसा और दया युक्त हैं। आचार, विचार और उच्चार – इन तीनों को विस्मृत और धर्ममय रखें।’

ऐसे शास्त्रसमंत धर्मोपदेश से सबकी वृत्तियाँ उनकी ओर आकृत हो गईं। भक्तजनों का शोक मिट गया, सभी ने मिलकर स्वामीजी का पूजन किया। लोगों ने अनेक प्रकार की भेंट उनके चरणों में रखी। इसी दिन सहजानन्द स्वामी ने सबको स्वामिनारायण मंत्र की महिमा समझाई और उस मंत्र की धुन कराई। इस तरह उन्होंने अपने स्वरूप के भजन का प्रारम्भ करवाया। राम कृष्ण गोविन्द के साथ-साथ स्वामिनारायण मंत्र के जप का प्रारंभ हुआ।

बस, इसी दिन से सहजानन्द स्वामी को सब लोग ‘श्रीजीमहाराज’ तथा ‘भगवान स्वामिनारायण’ के दुलारभरे नाम से सम्बोधित करने लगे।

शीतलदास नाम का एक ब्राह्मण भगवान की खोज के लिए गुजरात आ पहुँचा। उसको किसी ने खबर दी थी कि ‘गुजरात में रामानन्द स्वामी सम्भव सदृश हैं, तुम उनके पास जाओं, वे तुम्हें भगवान से मिला देंगे।’

वह घृङ्गता-फिरता ‘फणेणि’ पहुँचा। परंतु तब तक रामानन्द स्वामी का देखान हो चुका था। इस खबर को पाकर शीतलदास हंसता हो गया तथा अपने भाग्य को कोसने लगा। जब वह वापस लौटने लगा तब अचानक महाराज ने उसे बुलाकर कहा, ‘आज के दिन तुम यहाँ ठहर जाओं, मैं तुम्हें रामानन्द स्वामी का दर्शन कराऊँगा। यदि जाना ही है तो कल दोपहर के बाद चले जाना।’
इस सूचना को ध्यान में रखते हुए शीतलदास वहाँ ठहर गया। दूसरे दिन श्रीहरि ने उसको ‘स्वामिनारायण’ मंत्र का जप करने के लिए आदेश दिया। मंत्रजाप करते ही कुछ देर में शीतलदास को समाधि लग गई। जहाँ
उसने अक्षरधाम का दर्शन किया और देखा कि श्रीहरि स्वयं संहासन पर
विराजमान हैं और रामानंद स्वामी उनके सामने बन्दन करते हुए हाथ
जोड़कर खड़े हैं।

रामानंद स्वामी ने कहा, ‘सहजानंद स्वामी के स्वरूप में सभी
अवतारों का पूरा समावेश है, क्योंकि वे तो अवतारों के भी अवतारी हैं और
सबके कारण हैं।’

समाधि के टूटने पर शीतलदास ने पूरी घटना का बयान, वहाँ उपस्थित
हर किसी को सुनाया और स्वयं महाराज के चरणों में गिर पड़ा और निवेदन
करते हुए वे कहने लगे कि है महाराज, मुझे ल्यागीदेश केकर कुर्तार्थ करें।
श्रीहरि उनको ल्यागाश्रम की दीक्षा दी और उनका नामकरण हुआ ‘स्वामी
व्यापकानन्दजी।’

श्रीहरि का कठोर धर्माचरण

भगवान स्वामिनारायण स्वयं कठोर धर्माचरण करने के बाद ही
दूसरों को उस प्रकार आचरण रखने की प्रेरणा देते थे। उनकी यह
स्वभावितता थी कि वे सभी संतों को भोजन कराने के बाद ही भोजन
करते थे। दोपहर को भोजन के बाद करीब दो बजे तक कथावार्ता का
आयोजन करते। संध्या के समय स्नानादि करके अतिथि को भोजन आदि
से तृत्त करके दैनिक नियमानुसार रात के करीब बारह बजे तक कथावार्ता
में लगे रहते थे। करीब दो घंटे की नींद के बाद रात के दो बजे उठकर
सभी संतों को जगाकर ध्यानस्थ होने का आदेश देते। श्रीहरि उस समय
हाथ में छड़ी लेकर घूमते और यदि कोई नींद की झपकी खा लेते तब
छड़ी से छूकर उनको जगाते और ध्यान का प्रशिक्षण देते। सुबह चार बजे
वे स्नान, पूजा तथा धार्मिक अंश के बाद सूर्योदय होते ही भिक्षा के लिए
चले जाते। भिक्षा में प्राप्त हुई सामग्री से रसोई तैयार करके वे यात्रियों
तथा संतों को भोजन कराते। यही उनका नियत्क्रम था। उनके साथ
रहनेवालों की ध्यक्षता कभी मिटती ही नहीं थी, न तो उनकी नींद भी कभी पूरी होती थी।

श्रीहरि की ऐसी अनन्य दृढ़ता, उनका भक्ति तप एवं धर्म से परिपूर्ण नित्यक्रम तथा उनके दिव्य व्यक्तित्व को देखकर प्रतीत हो जाती है कि इक्कीसवर्ष के इस युवा युगविभूति ने बड़े-बड़े सनों तथा विशाल भक्त समुदाय को कदः अनुशासन में रखकर किस प्रकार कलयुग में सत्य की स्थापना की होगी। उनकी अनन्य प्रतिभा से निष्पन हुआ यह असाधारण चमत्कार था।

सत्संग का प्रचार और रघुनाथदास का उपद्रव

महाराज ने सौराष्ट्र के जुनागढ़ तथा अन्य प्रांतों में विचारण का प्रारम्भ किया। एक दिन धोराजी में वे मायानंद भक्त के घर उतरे थे। उनके घर-आँगन में सभा करके श्रीहरि ने उपदेश देते हुए ही उपस्थित विभिन्न मतानुयायियों को समाधि लगवा दी। सभी को अपने अपने हार्दिक और उनके धार्मिक दर्शन का दर्शन हुआ। जागरत होते हुए सभी को उनके अलौकिक स्वरूप का निश्चय हो गया। अनुष्ठानों और नाटकों को उन्होंने नरककुण्ड की यातना का प्रत्यक्ष दर्शन कराया। तथा समाधि में ही कई लोगों को अपने पाप के कारण यमदूतों की कठी मार का अनुभव हुआ। सभी इस अनुभव के बाद सत्संगी होने के लिए आने लगे। महाराज ने सभी को वर्तमान धारण करवाया।

धोराजी से छुटकारा होकर वे भाड़ेर पढ़िए। वहाँ से मायावर्ध मायाराम भट्ट के घर पढ़िए, जहाँ पर रघुनाथदास ने बड़ा उपद्रव खड़ा कर दिया था। रामानंद स्वामी स्थापित धर्म-शासन पर अधिकार करने के लिए उसने पाखण्डी प्रचार प्रारम्भ किया था। रघुपति का दम्भ करके वह रामानंद स्वामी की नकल किया करता था। भोले-भाले भक्त उनके जाल में फंस रहे थे। वह केवल निन्दा ही नहीं, उनका विरोध करने पर उतारे हो गया था।

2. सनों के द्वारा लिखे गए इतिहास के आधार पर।
3. रघुनाथदास, रामानंद स्वामी का एक अहंकारी शिष्य था, और हमेशा सहजानन्द स्वामी के साथ हेमभाव रखता था।
लोगों के मन में श्रीरंग पैदा करते हुए वह कहता था कि रामानन्द स्वामी का सन्ता शिख थे। उन्होंने बहुत सराहनीय उपलब्धि प्राप्त की। उन्होंने अपनी सारी देवता एवं प्रेम अमृत्यु ही दिया है, इसीलिए मैंने अपने आप गुरुपद धारण किया है।'

श्रीहरि, संतमण्डली के साथ पीपलाणा में नरसिंह मेहता के घर प्रज्ञा।

यहाँ एक दिन शाम को उस गाँव के बाहर एक पुराने बसरे के पेड़ के नीचे पड़ा है। इस पेड़ पर हजारों भूतों का निवास था। श्रीहरि ने पेड़ के नीचे सभा करके स्वामिनारायण मंत्र की धुन का आरंभ करवाया। उस दिन के बाद वह भूत का कोई उपद्रव नहीं हुआ। सभी आत्माओं की मुक्ति हुई।

श्रीहरि ने उन्होंने दिव्य देख देखकर बदरङ्ग्राम भेज दिया। इसी पेड़ पर झुला बाँधकर हरिकंठों ने श्रीहरि को झुलाया।

परंतु अब तक कई हरिकंठों के मन में गुरु रामानाद स्वामी का विय निवास होता था। एक दिन उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी से कहा, ‘स्वामी! भुज के हरिकंठों को आप जाकर धीरज दीजिए, जिनका रामानाद स्वामी पर अत्यधिक प्रेम है।’

मुक्तानन्द स्वामी ने तुरंत कहा, ‘प्रभु, रघुनाथदास बड़ा अभिमानी और अविवेकी है, सत्संग में रखने लायक नहीं है, उसे बोलने का ढंग भी नहीं आता, इसलिए उसकी बातों पर आप ध्यान न दें। विशेष कोई गढ़बड़ करे तो उसे अहमदाबाद भेज दीजिएगा।’

तत्प्रथात् मुक्तानन्द स्वामी संतों के साथ भुज की ओर चल दिए।

नरक के कुण्ड खाली किये

श्रीहरि यहाँ से अगरताई होकर कालवाणी गाँव पहुँचे। भीमभाई नामक एक हरिकंठ उसी समय कालवाणी पहुँचे। प्रणाम करके उन्होंने कहा, ‘महाराज! इस मृत्युलोक में ऐसी प्रथा है कि राजा के यहाँ जब पुत्र का जन्म होता है और जब नया राजा नियुक्त होता है, तब वह अपने राज्य के सारे कैदियों को छोड़ देता है। आज आपका भी पुजारियों हुआ है, फिर भी नरक के कुण्ड में पड़े हुए जीव, बंदियों की तरह क्या पीड़ा भोगते रहें? आपके धर्मधुरा धारण करने से सभी अत्यंत प्रसन्न हुए हैं।
आपसे हमारी प्रार्थना है कि आप कृपया किसी संत को भेजकर नरकवासी पापी जीवों को मुक्त हों।

भीमभाई की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि बड़े उत्साह में उठे। उन्होंने स्वामी स्वरूपनादंदजी को आप्सा दी कि, ‘आप यमलोक में जाएं और सभी जीवों को स्वामिनारायण मंत्र के द्वारा वहाँ से मुक्त कर उनको भूमापुरुष के लोक में भजन दीजिए।’

महाराज की आप्सा से स्वरूपनाद स्वामी उसी समय समाधि में बैठ गये और दिव्य देह धारण करके यमलोक में पहुँचे। नरक के विभिन्न कुंडों में सड़ रहे दुःखी जीवों को देखकर उनके मन में दया उमड़ पड़ी। उन्होंने तुरंत उच्चवर्ग से स्वामिनारायण मंत्र का उत्साहों किया। उसी पल सभी पीड़ित आत्माओं को चुर्भुज स्वरूप प्राप्त हुआ। सभी दिव्य देह धारण कर, दिव्य विवाहों में बैठकर भूमापुरुष के लोक में जा पहुँचे। स्वरूपनाद स्वामी ने समाधि से जाग्रत होकर सारी बातें सबको सुनाई।

तब श्रीहरि ने कहा, ‘हमें तो इस समय अनन्त जीवों का कल्याण करना है, हमारे अभिलाषा में संतों एवं हरियों के संसर्ग में आने वाला पापी हो या पुण्यशाली, सभी का संकल्प मात्र से कल्याण करना है।’

भीमभाई श्रीहरि की ऐसी विशाल कल्याण भावना देखकर विस्मित हो गये।

श्रीहरि पौधी पूर्णिमा के अवसर पर मांगोल पत्थरे। यहाँ पौधी पूर्णिमा का उत्सव किया। माणावर द के नवाब गजेफरखान ने श्रीहरि को अपने महल में पहुँचने का निमंत्रण दिया। माण मास आराम्भ होते ही श्रीरि मांगोल से माणावर पत्थरे और मायाराम भट्ट तथा गोविन्दराम भट्ट के घर निवास किया। यहाँ श्रीरि नदी के तट पर वसंतपंचमी का उत्सव मनाकर श्रीहरि ने रंगोत्सव का लाभ दिया। उत्सव के बाद सभा में विराजमान हुए। गाँव के जादुवजी सेंट ने श्रीहरि का पूजन करके उन्हें भेंट अर्पण की। इस मूल्यवान उपहार को देखकर सन्तानाथदास के मन में जलन पैदा हुई। वह सोचता था कि ऐसा उपहार तो मुझे मिलना चाहिए था। ऐसे वर्ष में शरीर पर ही शोभा दे सकते हैं। परंतु श्रीहरि ने उनकी परवाह न करते हुए अपने स्वभावानुसार उपहार में आए वस्त्र आदि मायाराम और गोविन्दराम भट्ट को
अर्पण कर दिए। रघुनाथदास और भी चिढ़कर ईश्वरजी श्रीहरि के लिए उल्टा-सीधा बकने लगा।

श्रीहरि ने सोचा कि यह किसी को चैन से जीने नहीं देगा, जहाँ भी जाएगा, वहाँ क़ेश खड़ा करेगा। इसे यहाँ से दूर करना ही आवश्यक है - एकबार श्रीहरि ने उसे अपने पास बुलाया। सम्मान के साथ उसे अपने पास बिठाकर श्रीहरि ने कहा, ‘रघुनाथदास! गुजरात के हरिभक्तों को रामानन्द स्वामी के वियोग का बहुत दुःख है। क्या आप उनको सान्त्वना देने के लिए वहाँ पधारा? आप यदि अहमदाबाद पथरों और कथावाता करें; तो हरिभक्तों को बहुत सान्त्वना मिलेगी।’

यह सुनकर रघुनाथदास गर्व से इतराकर कहने लगा कि मैं गुजरात जाकर ऐसी बातें कहूँगा की सारा गुजरात मेरे काबू में आ जाएगा। इतना कहकर वह अहमदाबाद जाने के लिए निकल पड़ा।

रघुनाथदास को बिदा करके श्रीहरि पीपलणा होकर मांगरोल पधारे। वहाँ पुप्पड़, रामनवमी तथा भैं एकादशी के उत्सव किये। उन्होंने देखा कि गाँव में एक पुरानी बावड़ी थी। जो गंगा का दर बन चुकी थी। श्रीहरि ने अपने संतों के साथ स्वयं जाकर इस पुरातन बावड़ी को स्वच्छ करने का अभियान शुरू किया। कुछ समय के बाद बावड़ी स्वच्छ पानी से छलकने लगी। श्रीहरि ने ऐसे अनेक पूर्तकर्म का प्रारंभ किया। संवत 1859 (सन् 1803) आपादु मास की देवशायनी एकादशी भी वहाँ करके उन्होंने जनमाष्टमी के उत्सव का लाभ दिया। इस उत्सव में कुछ हरिभक्त अहमदाबाद से भी पधारे थे। उन्होंने वहाँ रघुनाथदास द्वारा की गई गड़बड़ी की बातें बताई। उसके उपद्रव को शांत करने के लिए महाराज ने आश्रम के वरिष्ठ संत स्वामी रामदासजी को अहमदाबाद भेजा।

[2] मगनीराम से अद्वैतानन्द

दक्षिण भारत में मगनीराम नामक एक द्रविड़ ब्राह्मण था। वह शास्त्रज, मुपुश्चु एवं तपस्वी था। उसे परमात्मा को प्राप्त करने की तीब्र अभिलाषा थी। परमात्मा की खोज में घूमता हुआ वह बंगाल में जा पहुँचा। उसने सुना था इस प्रकरण में आपादु संवत 1859 के प्रसंग दिये गए हैं।
कि पीपा नामक एक राजा ने शारदादेवी को प्रसन्न किया तब उनके द्वारा उसे परमात्मा का साधकाक हुआ था। इसलिए मगनीराम राजा के गुरु के पास जा पहुँचा। एक दिन उसने गुरु से पूछा कि, ‘गुरुदेव शारदादेवी को किस प्रकार प्रसन्न किया जा सकता है?’ गुरु ने बड़े प्रसन्न होकर इस युवा ब्राह्मण को शारदादेवी को प्रसन्न करने का उपाय बताया। गुरु की एक सोलह वर्ष की पुत्री थी। उनके मन में मगनीराम को देखते ही विजली की भाँति विचार कौंदा था कि में इसे शिष्य बना दूंगा तो मुझे दामद हूँढने के लिए कहीं और नहीं जाना पड़ेगा।

मगनीराम ने गुरु के द्वारा साधना करके शारदा देवी को प्रसन्न कर दिया। इससे उसे कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त हुई। उन्होंने जब गुरु से बिदा माँगी तो गुरु ने आदेश देते हुए कहा, ‘बेटा, तुझे मेरी एक आज मानी पढ़ेगी, तुम देख रहे हो कि मेरी सोलह वर्ष की रूपवती पुत्री है, तु इससे विवाह करके यहीं पर उठा जा।’

मगनीराम ने विनंतता से कहा, ‘गुरुदेव, मुझे तो जीवनभर ब्रह्माचरी रहना है। वैसे भी गुरुपुत्री तो बहन के समान होती है, इसलिए मैं उससे विवाह नहीं कर सकता।’ इतना कहकर वह जगनाथपुरी की ओर निकल पड़ा।

यहाँ उसने सोचा, ‘क्यों न अपनी सिद्धियाँ का प्रयोग करके देख! इससे तो राजा, महाराजा, योगी और महत्त्व को भी वश में किए जा सकते हैं और आराम की जिददी बसर कर पाएँगे।’

उसने बाबा का भयंकर वेश बनाया, गले में मोटे मनकों की रुद्राक्षमाला, सिर पर लम्बी जटा, बड़ी और छोटी हुई दाढ़ी-मूंछ, बड़ी-बड़ी लाल आँखें, कपाल में सिंदूरी तिलक, कान में सोने की कड़ियाँ, हाथ में करः, एक हाथ में चिमटा, कौंंख में जादूई खड़ाँ, कछौटा मास्कर लंगोट की तरह पहनी छोटी भोती आदि भयंकर वेश बनकर पालकी में भूपना शुरू कर दिया। साथ में भयंकर परिवार धारण किये शिशुओं की एक टोली बनाई। सबसे आगे एक बाबा हाथ में भंगवा झंडा लिए ऊँठ पर सवार होकर चलता। इस प्रकार वह गाँव-गाँव घूमने लगा। राजा, महाराजा, योगी, महत्त्वों को अपनी सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर दो-पाँच हजार स्वर्ण-मुद्राएँ दण्ड रूप में एँठने लगा।
एक दिन वह पोरबन्दर जा पहुँचा। वहाँ के मत्तधारी गुसाँईजी को
उसने चिमटे से पीटकर उसने तंत्र-मंत्र का भय दिखाया और सैंकड़ों स्वर्ण-
mुद्राएं वसूल की।

गुसाँईजी ने डंटे हुए कहा, ‘अरे, मगनीराम तुम मेरे जैसे मेडक को
डाँट रहे हों और यदि तुम सच्चे सिद्ध हो तो जाओ मांगरोल में, वहाँ
जीवनमुक्ता भगवान स्वामीनारायण बिराजमान हैं। लोग उनको भगवान
मानकर पूजते हैं। वे बड़े समर्थ और ऐश्वर्यवान हैं। हमारे जैसे सहस्त्र मेडकों
को डाँटने से क्या? यदि आप स्वामिनारायण जैसे एक ही मणिथर को जीत
लें तो मांगेंगे की तुम सक्रियता सिद्ध हो। यदि साहस हो तो आप एक बार
उनसे मिलिए। सुना है कि वे तो आप जैसे को पलभर में भा में करके
अपना शिश्व बना लेते हैं।’

मगनीराम यह सुनकर छुँज़लाया, मानो उसकी क्रोधार्षि में तेल पड़
गया हो! वह तमतमाकर मांगरोल की ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँचते ही उसने अपने एक चेले को राजमहल में भेजा और
पाँच हजार रुपए वसूलने के लिए धमकी दी: ‘यदि तुमने रुपए नहीं दिये
तो में पूरे शहर पर पत्थरों की वर्षा करूँगा। एक ही मंत्र से सारे शहर को
भस्म कर दूँगा।’

यह सुनकर राजा गजेफरखान ने कहा: ‘बबाजी! पाँच ही क्यों, मैं
आपको दस हजार रुपए देने को तैयार हूँ, यदि आप हमारे भगवान
स्वामिनारायण को जीत लें।’

वह चेला खाली हाथ लौटा और उसने सारी घटना मगनीराम को
सुनाई। मगनीराम का क्रोध आसमान को छूने लगा। घमंड से अंधा होकर
दसबीस चेलों के साथ वह श्रीहरि के पास आ पहुँचा। मगनीराम ने चिमटा
बजाकर गर्जना की, ‘अरे ओ जीवनमुक्ता! पाखाण्ड क्यों चला रहे हों? यदि
तुम सच्चे सिद्ध हो तो मुझे अपनी सिद्धि दिखाओ।’

श्रीहरेि ने अति शांतभाव से उत्तर देते हुए कहा, ‘हम तो सिद्धाई करते
नहीं, हम तो जीवों को उपदेश देकर धर्म की ओर मोड़ते हैं। जीवों के
कल्याण के लिए हम उनको ज्ञान देते हैं और भजन करवाते हैं।’

यह सुनकर मगनीराम को लगा कि वह तो मामूली साधु जैसा लगता
है। इसीलिए सभी को डराता हुआ वह कहने लगा, ‘तुम लोगों ने मेरा नाम नहीं सुना क्या? मैं हूँ देवीवाला मगनीराम! मुझे बड़े-बड़े सिद्ध एवं राजा-महाराजा नमस्कार करते हैं। मैं मारण, मोहन, वशीकरण, स्तंभन, आदि कई विद्याओं का ज्ञाता हूँ। मैं शारदादेवी को प्रसन्न किया है। मेरी एक ही फ़ूंक से पर्वत फट जाते हैं, वर्षा होने लगती है। मैं पानी में आग लगा सकता हूँ। तुम मुझे तस हजार रुपए देते हो कि नहीं? वर्ना मैं सारे शहर को समुद्र में डुबा दूँगा।’

श्रीहरि ने शान्तिपूर्वक कहा, ‘देखो मगनीराम, हम कभी रुपये नहीं रखते। यदि तुम चाहो तो अन का प्रवंध कर सकते हों। यदि उसमें भी तुम नहीं मानोंगे और अपनी देवी को भेजना चाहोगे तो उसे जवर भेज देना। तुम अपने मंत्र-तंत्र का प्रयोग बड़े शौक से कर सकते हो, हम किसी से डरनेवालों में नहीं हैं।’

मगनीराम क्रोध से फट पड़ा। अब तक ऐसी उसने चुनौती का सामना कर्ही नहीं किया था। उसने अपना चिमटा धरती पर पटककर ललकार दी, ‘मैं तुम्हें देख लूँगा स्वामिनारायण।’ वह अपने निवास स्थान पर चला गया। स्नानादि के बाद वह देवी की आराधना के लिए बैठ गया। एक के बाद दूसरे मंत्रों का प्रयोग शुरू हो गया, परंतु उसे कोई सफलता नहीं मिली। अंत में उसने आहवान करके स्वर्ग देवी को प्रकट की।

शारदादेवी ने प्रकट होते ही मगनीराम को फटकार दी, ‘अरे मगनीराम, तुम यह क्या करने पर तुले हो? क्या तुमने अपना घर सिद्धियों के लिए छोड़ा था? तुम्हें परमात्मा की चाह नहीं थी? तुम्हें स्वतं: एक कन्या प्राप्त हो रही थी, तुमने उसे नकार दिया। ब्रह्मचारी रहना पसंद किया, क्यों? परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही न?’

‘जी माताजी।’ मगनीराम ने कहा। देवी ने आगे कहा, ‘तो सुन यह स्वामिनारायण इन्द्र, चन्द्र, त्रिदेव आदि सभी देवों के स्वामी हैं। इतना ही नहीं वे मेरे भी उपास्य देव हैं, उन्हें कोई नहीं जीत सकता। मुझे जैसी कई देवियाँ उनके चरणों की सेवा चाहती हैं। यदि तुम अपना भला चाहते हो दीनतापूर्वक उनके आश्रित हो जाओ। त्यागी बनकर ज्ञान, सेवा और भक्ति के द्वारा उनको प्रसन्न कर लो।’
मगनीराम के अन्तःचक्षु खुल गये। वह आज तक किये अत्याचारों का पछतावा करने लगा। उसका मन श्रीहरि की शरण में जाने के लिए व्यक्त हो उठा, उसे रातभर नींद नहीं आई।

प्रातःकाल होते ही नानादी से पवित्र होकर वह श्रीहरि के निवास स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ पर पिछली रात के कुछ जूठे बरतन पड़े थे, वह माँजने बैठ गया। उस समय वहाँ से जो संत निकले, उनको उसने प्रणाम किया। बाद में वह श्रीहरि के पास पहुँचा। साप्ताहिक दण्डवत् प्रणाम करके, वह उनके चरणों में गिर पड़ा और दीनभाव से कहने लगा, ‘प्रभु, आप तो सभी अवतारों के अवतार हैं। मेरे अपराधों की क्षमा कीजिए, मुझे अपनी शरण में स्वीकार कीजिए और अपना आश्रित त्यागी बनाइए।’

श्रीहरि मुस्कुराते हुए कहने लगे, ‘मगनीराम हमारे साधु निर्माणी भाव से रहते हैं। तुम तो बाबाओं के मण्डलधारी अभिमानी हो, ऐसी स्थिति में तुम्हारा और हमारा मेल नहीं जमेगा।’

‘महाराज! आप जो कहेंगे, मैं वही कहूँगा। मैंने आज अपना पूरा अभिमान छोड़ दिया है।’

‘अच्छा!’ श्रीहरि ने कहा, ‘देखो, सबसे पहले तुम्हें अपनी लम्बी दाढ़ी-मूँछ और बड़ी जटा मुंडवानी पड़ेगी। क्योंकि जैसे राजा को अपनी मूँछ बहुत प्यारी होती है, उसी प्रकार बाबाओं को अपनी दाढ़ी तथा जटाएँ प्यारी होती हैं, उसका त्याग कर दो। तुम्हारी उस दाढ़ी-जटा और मूँछ के बालों पर हमारे ये संत पैर रख कर चलेंगे, क्या तुम्हें कुबूल है? ’

‘प्रभु! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ? ’ इतना कहकर मगनीराम ने अपनी दाढ़ी, मूँछ और जटा मुंडवा दी और सारे बाल संतों के रस्ते पर डाल दिये। वह सीधा साधु-दीक्षा लेने के लिए महाराज के पास पहुँचा।

अचानक एक हरिभक्त ने कहा, ‘प्रभु! यह जाति का बाबा है, वे लोग आसानी से अहंकार छोड़ने वाले नहीं है। आपको फँसाने के लिए उसने यह जाल रचा है।’

तब महाराज ने उसकी अन्तिम परीक्षा लेने के इरादे से कहा, ‘मगनीराम! तुमने अहंकार छोड़ दिया है, इसका प्रमाण तभी मिल सकता है,
जब तुम इन सारे संतों के जीवन की गठरी अपने सिर पर उठाकर उनकी पाँच प्रदक्षिणा करो। इससे तुम अपने सभी पापों से मुक्त हो जाओगे।'

मगनीराम प्रसन हो गया। उसने तुर्न सभी संतों के जीवन की गठरी अपने सिर पर उठाकर सभी संतों की पाँच प्रदक्षिणा की। वह देखकर उसके शिष्य बोल उठे, ‘यह आप कैसे कर रहे हैं? आपकी बुद्धि ठिकाने पर तो है?’

‘मैं पूरे रात में हूँ। आपको याद होगा कि सत्य के लिए हरिशंकर एक अर्थक सर्कार के पास बिके थे। मैं तो अपने आत्मा की मुक्ति के लिए, यह सब कर रहा हूँ।’ मगनीराम ने अपने शिष्यों से कहा।

उसने उसी दिन से उपद्रव मचाने से रोक लगा दी और त्यागी होने के लिए महाराज से पुन: पुन: बिनती की।

श्रीहरि ने फिर एकबार चेतावनी देते हुए कहा था: ‘मगनीराम, इसके लिए तुम्हें सांसारिक सुख छोड़ने पड़ेगे।’

मगनीराम हर शर्त मानने के लिए तैयार हो गया। श्रीहरि ने उसकी मुमुक्तता देखकर उसे भागवती दीक्षा प्रदान की। उसका नाम रखा गया स्वामी अह्न्तन्द। परंतु वे हरिभक्तों के समुदाय में ‘देवी वाले मगनीराम’ के नाम से प्रसिद्ध थे।

रामचन्द्र सेठ का निधन

मांगरोल में स्वामी रामनन्दजी के आदेशानुसार सदस्यता का संचालन हो रहा था। श्रीहरि ने उसे पुन: आरम्भ करना चाहा ताकि दारिका की यात्रा पर आने-जाने-वाले यात्रियों को उसका लाभ मिले। इसलिए उन्होंने आत्माराम देवरागी के श्याम में उसकी अनुमति लेकर सदस्यता देने का आरम्भ किया। आगे चलकर इस देवरागी ने अनेक परेशानियाँ खड़ी कर दीं। आखिर अन्वेषण पर तलाश लग गए।

श्रीहरि एक दिन मांगरोल में दूषा तलेया में स्नान करने पढ़े। साथ में हरिभक्तों के साथ रामचन्द्र सेठ भी थे। श्रीहरि साथ सभी स्वामिनिर्माण की धुन करते स्नान कर रहे थे। उस समय सेठ जी के मन में एक संकल्प उठने लगा कि, ‘यहाँ पर्याप्त पानी है, पर कपड़े धोने के लिए पत्थर नहीं है।
पचास-साठ कदम दूर, एक विशाल शिला दिख रही है। जो वहाँ किसी काम की नहीं है। यदि उस शिला को तालाब के किनारे पर लाया जाए तो महिलाओं की समस्या हल हो सकती है।

उन्होंने महाराज से यही प्रार्थना की, ‘प्रभु, कृष्णावतार में आपने गोवर्धन पर्वत को उठाया था, परंतु अब आप इस शिला को अपनी अंगुली से उठाकर तालाब के किनारे पर रख दें, तो गाँव की हर महिला का कष्ट दूर होगा।’

श्रीहरि ने कहा, ‘तुम जाकर उस शिला को हाथ लगाओ। हमारे सम्बन्ध के कारण तुम्हारे जैसे भक्तों के द्वारा भी वह उठाकर यहाँ आ जाएगी।’ रामचंद्र सेठ ने आदर्शवत्त कह सुना और श्रीहरि के आदेशानुसार उस शिला को छुआ। उसी पल पूरी शिला भूमि से उस पल उठने लगी और धीरे-धीरे सेठ के पीछे खिसकती हुई तालाब के किनारे पर अटक गई। यह चमककर देखकर सभी के आश्रय की सीमा न रही। गाँववालों को इसी कारण बहुत अच्छी सुविधा हो गई।

जब स्नान करके श्रीहरि गाँव में लौटे तब सभा में उन्होंने सेठों से कहा, ‘सेठजी, यदि पत्थर उठाने भर से कोई भगवान बन जाता हो, तो हनुमानजी ने गोवर्धन पर्वत से भी बड़ा गुरुमाधि पर्वत उठाया था। लेकिन वे तो भगवान नहीं कहलाए। भगवान का काम तो समाधि लगवाना, भगवान का धाम बताना, जीव के अन्तःकरण का परिवर्तन करके मोक्ष देना, अति दुःख दुर्जन को भी दोषों से मुक्त करके भगवान-परायण कर देना यही भगवान के कर्त्य हैं। अतः कभी मत समझा कि चमककर और शक्ति का प्रदर्शन करनेवाला ही भगवान है।’

समाधि प्रकरण

मांगरोल और कालवाणी में श्रीहरि ने कई लोगों को दृष्टि अथवा स्पर्श द्वारा समाधि लगवाई थी। उनकी अपनी छड़ी, पूष्प, माला, वस्त्र अथवा अलंकार के स्पर्श से भी लोगों को समाधि लग जाती थी। मनुष्यों को क्या कहें, वे तो पशु-पक्षियों को भी समाधि लगवाय देते थे। कभी-कभी तो श्रीहरि की ध्वनि सुनने या दर्शनमात्र से, उनकी खड़ँड़ें के चमककर से
अथवा केवल उनके चिन्तन से भी समाधि लग जाती थी। कभी-कभी तो
उनकी कृपा से उनके आत्मित साधु-संत, गृहस्थ, हरिभक्त, सत्संगी भाई या
बाई आदि भी दूसरों को समाधि में ले जा सकते थे।

समाधि में कुछ लोग योगक्रियाएँ करते, तो कुछ लोग योग के 84 आसन
करते, कुछ लोग यमपुरी की यात्रा देखते, तो कुछ लोग यमराज की मार
खाते। विभिन्न सम्प्रदायों के मुमुशुओं को अपने-अपने इष्टदेवों और उनके
धामों के दर्शन भी हो जाते थे। समाधि में कुछ मुमुशुओं को ऐसे भी दर्शन होते
थे कि श्रीहरि की मूर्ति से चौबीसों अवतार प्रकट हो रहे हैं और वे अवतार
बाद में महाराज की मूर्ति में समा जाते थे। कुछ लोगों को अक्षरधाम में
महाराज के दर्शन होते थे। किसीको समाधि एक घंटे की, दो घंटे की, एक
dिन की, दो-चार दिन की, एक महीने, दो महीने और किसीको छः महीने
तक की समाधि लग जाती थी। समाधिस्थ लोगों के शरीरों का मुद्रा की तरह
एक दूसरे पर ढेर लगा दिया जाता था। उनमें से किसीका स्वजन किसीको बुलाने आता तो श्रीहरि उसका नाम पुकारकर उसको समाधि से जगाते और वह पूरी चमत्कारी घटना का बयान देने लगता।

लोज में अनकूट उत्सव

जूनागढ़ जिले के लोज गाँव के हरिभक्तों ने श्रीहरि से प्रार्थना की, ‘हे महाराज! जबसे आप ने धर्मधुरा संभाली, आप लोज नहीं पढ़ाए हैं। कपया अनकूट उत्सव मनाने के लिए, आप लोज पढ़ाए।’ उनकी भवापूर्ण विनती स्वीकार कर के श्रीहरि लोज पढ़े। बड़ी धूमधाम से श्रीहरि ने दोपेश्व और अनकूट महोत्सव का आयोजन किया। उस महोत्सव में दीव बंदर के एक व्यक्ति हरिभक्त आये थे। वे रामान्द स्वामी के शिष्य थे। उनके मन में विचार आया कि महानता कितनी होगी?

श्रीहरि ने उसी पल उसके मन की बात पकड़ ली। उन्होंने तुरंत एक पाँच साल के बच्चे को बीच सभा में खड़ा किया और पूछा कि इस सेट के मन की बात बता दो। बालक तुरंत सेट के मन की बात बोलने लगा। सेट चकित रह गये। उनको महाराज के स्वरूप का निश्चित हो गया। वे दो-चार दिन रहकर अपने गाँव लौटे, लेकिन बेचैन रहने लगे। तीन साल के बाद वे संसार का त्याग करके श्रीहरि की शरण में आ गये। महाराज ने उन्हें परमहंस की दीक्षा दी और उनका नाम रखा, स्वामी प्रभवानन्द।

लोज में हरिभक्तों को अपूर्व आनन्द देकर प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव करने के लिए श्रीहरि दशामी के दिन कालवाणी वापस पढ़ाए।

मुक्तानन्द स्वामी के श्रम का निवारण

श्रीहरि का अनन्य ऐश्वर्य था, जीव प्राणीमात्र को समाधि लगवाकर विभिन्न दिव्य धामों में भगवान का दर्शन करवाना। उनके दर्शनमात्र से अनंत भक्तों के नाडीप्रण आकृष्ट हो जाते थे। जब इस बात की खबर मुक्तानन्द स्वामी ने कछ मुंको सुनी, तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। क्योंकि उनका विश्वास था कि बिना अष्टंग योग से कभी समाधि नहीं लग सकती। समाधि के चमत्कार का अनुभव करनेवालों को मुनकर वे मानते थे कि यह तो अपरिपक्व बुद्धि का
परिणाम है। क्योंकि मैं इतने बयां से सत्संग में हूँ। मैं उपलब्धि विशयक बात अब तक कभी नहीं सुनी। उन्होंने सोचा कि इस विषय पर श्रीहरि से सीधा परामर्श करना ही आवश्यक होगा। यदि में लोगों कि अंधश्रव्दा का स्वीकार कर लूंगा तो सत्संग की बड़ी असेवा होगी। उन्होंने मेघपुर में एकान्त पाकर श्रीहरि से उलझना देना आरंभ किया किया:

‘महाराज! दिशों पाखंड मेली, सत्संगमा न थायुं केली।

समाधि काँई नथी सोयली, मोटा योगियने पण दोयली।

ते तो जेने ते तेने केम थाय, बीजा माने अमे न मनाय।’

अर्थात ‘हे महाराज! अपने समाधि के चमककरों को दिखाकर इस प्रकार का पाखंड को चला रखा है। आप इसे छोड़ दीजिए। क्योंकि सत्संग में दम्भी नहीं बनना चाहिए। मैं समझता हूँ, समाधि लगना आसान नहीं है, बड़े बड़े योगियों के लिए भी यह कठिन सिद्ध है, वह साधारण व्यक्ति को कैसे हो सकती हैं? लोग भले ही इस बात को मान लं। परंतु हम तो किसी प्रकार समाधि को नहीं मान सकते।’

श्रीहरि ने यह सुनकर कहा, ‘स्वामी, मैं तो सारे भक्त समुदाय को रामानन्द स्वामी अर्थात् ‘स्वामी’ एवं भगवान अर्थात् ‘नारायण’ इस प्रकार स्वामिनारायण का भजन करवाता हूँ, उस समय भक्तों के नाड़ी-प्रण अपने आप जड़वत हो जाते हैं और उन्हें समाधि लग जाती है।’

इतना कहकर उन्होंने मुक्तानंद स्वामी के शिशु संतदास को ध्यानस्थ स्थिति में बिठाया, कुछ ही पलों में उनके नाड़ी-प्रण खिंच गये और उन्हें समाधि लग गई।

श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी से कहा, ‘आप इनकी नाड़ीपरीक्षा ले सकते हैं। यदि वे होश में आए तो आप प्रयास कर सकते हैं।’

मुक्तानंद स्वामी नाड़ीपरीक्षा केले। उन्होंने बहुत प्रयास किया परंतु संतदासजी की नाड़ी हाथ में नहीं आई। वे शावक हो गए थे।

कुछ देर बाद जब वे जाने, तब श्रीहरि ने पूछा: ‘संतदासजी! समाधि में आपने जो कुछ देखा उसका वर्णन कीजिए।’

संतदासजी ने कहा, ‘मैं समाधि में अक्षराधाम गया था, वहाँ दिव्य
संहासन पर चिराजमान श्रीहरि का दर्शन हुआ। मैंने देखा कि शिव, ब्रह्मादि अनन्त देव, ज्ञानी और सभी अवतार एक पैर पर खड़े रहकर इस प्रत्यक्ष मूर्ति महाराज की प्रार्थना कर रहे थे हैं। उस समय रामानंद स्वामी ने मुझे पूछा कि मुक्तानंद स्वामी समाधि की बात क्यों नहीं मानते? सत्य कभी असत्य सिद्ध नहीं हो सकता, उनको ठोंरे समय में ही सत्य समझ में आ जाएगा।’

मुक्तानंद स्वामी ने यह सब सुना तो सही, परंतु वे संतुष्ट नहीं हुए।

जब श्रीहरि संतों के साथ कालवाणी पठाये तब मुक्तानंद स्वामी भी साथ में थे। वे प्रति:काल पलाश के बन के निकट शौचक्रिया के लिए गए, थे कि लौटते समय उन्हें सन्त रामानंद स्वामी का साक्षात् दर्शन हुआ।

मुक्तानंद स्वामी ने हाथ में रखी तुम्बी नींदँ रखते हुए बारबार गुरुचरण में दण्डबत्त प्रणाम किया। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे सजल नयनों से रामानंद स्वामी को सारी बातें सुनाने लगे।

रामानंद स्वामी कहा, ‘स्वामी, इतने गहरे शोक में क्यों ढूब गए? क्या आपको मेरे बचन याद नहीं है कि मैंने कहा था कि मैं तो हुगड़ुगड़ी बजानेवाला हूँ! खेल का पुख्ता अभिनेता तो बाद में आएगा। वही यह वर्णीराज है। मैंने तो रूढ़ि की गंजी से एक पूरी को ही कटाई की है, सारी गंजी की कटाई अभी शेष है। वह काम सहजानंद स्वामी के द्वारा संपन्न होगा। वे ही हम सभी के इस्टदेव हैं।’ यह सुनते ही मुक्तानंद स्वामी के अंतःकरण में भ्रम का अंधेरा दूर हो गया। हृदय में प्रतीति का प्रकाश फेंकने लगा। अंतर में आनंद की लहरें हिलों मारने लगी। उनके मन से कीर्तिने की पंक्तियाँ सहज ही प्रस्फुटित हो गई। वे गाने लगे:

भ्रम्भं भांगी रे हो हैैयानी, वात केने नथी ए कहानी।
बीती होय ते रे हो जाने, अण समझु मन इव्यं आणे।

(अर्थात् अब मेरे हृदय से भ्रम मिट गया है, मुझे इतनी बड़ी बात मिल गई हैं कि किसीको कहना ही व्यर्थ है।)

इन पंक्तियों को गुमगुमाते हुए मुक्तानंद स्वामी आनंद उल्लास के साथ लोट रहे थे, उनके चेहरे पर पहली प्रसन्नता देखकर परवर्तभई ने पूछा: ‘स्वामी! इतना आनंद क्यो, आपने कुछ पाया है क्या?’ मुक्तानंद स्वामी ने तुरंत रामानंद स्वामी के दर्शन की घटना कह सुनाई।
स्नानादिक के बाद फूल चुनकर स्वामी ने उनकी पुष्माला तैयार की। निवास स्थान पर आकर उन्होंने रामानुज स्वामी का आसन जो कि कहीं ऊपर की ओर लटका रखा था, नीचे उतरवाया। उनकी पादुकाएँ नीचे रखवाई। श्रीहरि जब स्नानादिक से निवृत होकर वहाँ पधरे तब स्वामी ने उनके चरणों में गुरु की चरण पादुकाएँ, श्रीहरि के चरणों में पहना दी। श्रीहरि के लाख मना करने पर भी उनको उठाकर रामानुज स्वामी के आसन पर बिठाया, चन्द्रन से पूजन करके उनको पुष्माला पहनाई तथा शीष आरती का पद गान शुरू किया जो उन्होंने अभी-अभी रचा था, ‘जय सदगुरु स्वामी’ यह पद आज भी सतसंग समुदाय में प्रतिदिन साधना के रूप में गाया जाता है।

उन्होंने रामानुज स्वामी के दर्शन की कथा सभा के बीच खड़े होकर सभी को सुनाई। सभा के समक्ष श्रीहरि को दण्डवादु प्रणाम किया। प्रभु मुक्तानन्द स्वामी पर अयंत्र प्रसन्न हुए। इस प्रसन्न के बाद ऐसा होने लगा कि स्वर्य मुक्तानन्द स्वामी के वचन या स्पर्श से लोगों को समाधि लग जाती थी। आज उनके भ्रम का निवारण हो गया, वे महाराज के स्वरूप का ज्ञान दूसरों को देने लगे।

**दो स्वरूपों में दर्शन**

श्रीहरि ने कालवाणी में एकदशी और कार्तिक पूर्णिमा मनाई। वहाँ आखा गाँव के नारायण दबे और उनके पुत्र नरसिंह दबे पधरे थे। उन्होंने श्रीहरि के चरणों में अपने गाँव पधारने के लिए निमंत्रण दिया। उसी समय पीपलाणा गाँव के नरसिंह मेहता ने भी श्रीहरि को अपने गाँव पधारने की प्रार्थना की। श्रीहरि ने दोनों आमंत्रणों का स्वीकार किया और कहा, ‘हम अवश्य आएँगे।’ दोनों भक्त अपने-अपने गाँव में इस शुभ समाचार को लेकर पहुँच गए।

श्रीहरि अगलताई में एक दिन रहकर आखा तथा पीपलाणा के लिए निकले। एक दौरान पर दोनों गाँव के रास्ते अलग-अलग निकलते थे। दोनों गाँवों की भक्त-मंडली श्रीहरि के स्वागत के लिए उपस्थित हो गई थीं। दोल, मुडङ्ग और शहनाई आदि वांजित्र के साथ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। अचीर-गुलाल के बादल छा ने लगे। पुष्पहर से श्रीहरि का स्वागत किया
गया। अंत में दोनों गाँवों की भक्त-मंडलियाँ श्रीहरि के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। आखा की भक्त-मंडली ने विनती की, ‘महाराज! गाँव में रसोई तैयार है, आप पहले हमारे गाँव को पावन करें।’ उसी समय पीपलाणा की मंडली ने निवेदन किया, ‘प्रभु! पहले हमने आमंत्रण दिया था। हमारे यहाँ भी रसोई तैयार है। आप अवश्य हमारे यहाँ पाएंगे।’

ऐसी परिस्थिति में क्रय करना चाहिए, उसका निर्णय करने के लिए श्रीहरि, मुक्तानंद स्वामी तथा मयाराम भट्ट से एकान्त में परामर्श करने लगे। स्वामी तथा भट्ट जी ने कहा, ‘प्रभु, आप तो अनन्त रूप धारण कर सकते हैं। ब्रह्माजी जब बढ़ते और बच्चों को उठा ले गये थे, तब श्रीकृष्ण ने बिलकुल वैसे ही दूसरे बच्चों और बढ़ते का रूप छ: महिने तक धारण किया था। इसलिए आज आपको भी दोनों में से किसी को अप्रसन नहीं करना है। दोनों गाँवों के हरिभक्तों की इच्छा आप पूर्ण करें।’

श्रीहरि ने उस परामर्श का स्वीकार किया और पीपलाणा के हरिभक्तों से कहा, ‘आप लोग अपने गाँव जाएं, कुछ देर में हम वहाँ आ रहे हैं।’

पीपलाणा के हरिभक्त प्रसन होकर तुरंत गाँव की ओर लौटे। परंतु श्रीहरि तो उसी समय तीन सिंहरिभक्तों और संतों का संच लेकर आखा गाँव की ओर चल पड़े।

किसी को मालूम नहीं था कि श्रीहरि योगकला धारण करके दो स्वरूप में उसी वक्त तीन सी साधुओं तथा विशाल भक्त समुदाय के साथ दोनों मार्ग पर एक साथ जा रहे थे।

उन्होंने आखा और पीपलाणा दोनो कांभों में एक साथ पड़ा और एक साथ दोनों गाँवों में भोजन किया, तथा सभी के भागों को हदयपूर्वक स्वीकार किया। शाम को जब वहाँ के दो-चार हरिभक्त किसी कार्यवास आखा गये, तो देखा कि महाराज तो यहाँ प्रातः समय से विराजमान ही हैं और साथ में संतों-हरिभक्तों का पूरा समुदाय भी दूसरा स्वरूप धारण करके दोनों गाँवों में उपस्थित रहा था।

यह मुनक आखा के हरिभक्त ओजोत नदी के उस पार पीपलाणा जा पहुँचे। कोतुत्वलवश सुबह से शाम तक दोनों गाँवों के लोग दर्शन करने के लिए आते-जाते रहे। सर्वेंक्र आश्वर्यकारी बातचीत फैल गया था।
श्रीहिर ने इस प्रकार तीन दिन तक दो स्वरूपों में दर्शान दिये। चौथे दिन महाराज ने लोगों से कहा, ‘ओझात नदी के किनारे हम विषयुग करना चाहते हैं। अब हम वहीं रहेंगे।’ ऐसा कहकर वे साधु-हरिवंचतों के साथ दोनों गाँवों से निकल पड़े। ओझात नदी के किनारे पर दोनों स्वरूप एक दूसरे में समाकर एक हो गये।

महाराज ने यहाँ छ: महीने रहकर भव्य विषयुग किया। प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन करवाया। अनेक लोग सत्संगी बने। श्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन उन्होंने विषयुग की पूर्णहृदि की। तत्पशात, ओझात के किनारे से चलकर श्रीहिर मेघपुर पथरे।

फकीर को सत्संगी बनाया

मेघपुर में एक फकीर ने श्रीहिर के ऐश्वर्य, प्रताप और समाधि की बातें सुनी थी। उसने सोचा कि ‘स्वामिनारायण को लोग अल्लाह खुदा तराह कहते हैं, परंतु वे यदि इस गाँव के अनपढ़ कृष्णजी भाट के मुख से कुरान बुलवा दे, तो में उनको अल्लाह मानूँ और उनकी बंदगी करूँ।’

अन्तर्यामी श्रीहिर ने उस फकीर के सामने कृष्णजी भाट को अपने पास बुलाकर खड़ा कर दिया और कहा, ‘कुरान बोलो।’

भाट ने कहा, ‘हे महाराज! कुरान किसे कहते हैं?’

श्रीहिर ने कहा, ‘कृष्णजी! तुम मूर्ति का ध्यान करके जो मन में आये वह बोलना आरम्भ कर दो और फकीर बाबा, तुम अपने धेरे में से कुरान निकालकर भाट की वाणी पुस्तक से मिलाते जाओ, यदि कहाँ वह गलती कर बैठे तो आप अवश्य सुधारना।’

इतना कहते ही श्रीहिर ने भाट की ओर दृष्टि की। वह तो आँखें बन्द करके उसी पल कुरान की आयात करते बोलने लगा। फकीर कुरान की पुस्तक अक्षरः मिलाता रहा। परंतु एक भी गलती निकाल नहीं पाया।

अंत में आश्चर्यचकित होकर फकीर कहने लगा, ‘या अल्लाह! कुरान की आयात यह कृष्णजी क्या बोलेगा। महाराज वह तो आप ही बोल रहे थे।’

इतना कहकर वह श्रीहिर के चरणों के पास ही नमाज पढ़ने लगा। श्रीहिर स्वयं खुदाताला हैं, ऐसी उसको प्रतीत हुई। वह श्रीहिर से नियम ग्रहण करके
सहजानंद चरित्र

कंठी पहनकर सत्संगी हो गया। शराब, मांस, चोरी और व्यभिचार का त्याग करने का नियम धारण करवाया। हाँलाकि अपने रिश्तेदारों से वह भारी परेशान किया गया परंतु वह जीवनभर सत्संगी ही बना रहा।

[ 3 ]

सदाब्रत की प्रवृत्ति

मेघपुर में श्रीहरि ने दो महीने रहकर देवशयनी एकादशी का भव्य उत्सव किया। इस गाँव के मुख्य मार्ग से द्वारिका जानेवाले हजारों यात्रियों के लिए श्रीहरि ने मेघपुर में सदाब्रत-अन्नक्षेत्र का आरम्भ किया था। माणवदर, सरधार, फण्डों, अगतारई तथा लोज में भी सदाब्रत आरम्भ हो चुके थे। प्रतिदिन सैकड़ों मुमुशु, सदाब्रत के लिए आते थे। प्रासादिक अन्न पाकर वे कृतार्थ होते थे। सदाम्रत के लिए आनेवाले लोग अवस्था पूछते थे। क्या यह सदाब्रत किसकी ओर से दिया जा रहा है? जब उन्हें बताया जाता था कि यह भगवान स्वामीनारायण की ओर से दिया जाता है, तो वे कौतूहलवश श्रीहरि के दर्शन के लिए जाते और उनसे आकृष्ट होकर सत्संगी बन जाते थे। कई साधु, बाबा, वैरागी और श्रीहरि के शिष्य बनकर रह गये। कुछ लोगों को तो श्रीहरि का नाम सुनते ही समाधि लग जाती, और वे अपना पंथ छोड़कर उनके चरणों में त्यागी होकर रह गए।

परंतु कुछ राग दृष्ट रखवाले, वैरागी क्रौंधित होकर कहने लगे कि इस जीवनमुक्ति के पास जादू का गुटका है। उसके द्वारा वे लोगों को बहकाते हैं, जादूटोना करके वे हमारे भोले-भाले शिष्यों को फँसाकर अपने आश्रित बना लेते हैं, इसलिए जहाँ भी इनके सदाब्रत हों, वे स्थान तोड़ देने चाहिए और अनाज लूट लेना चाहिए। उनके साधुओं की माला, जनेऊ तोड़ देनी चाहिए और पूजा-सामग्री फेंक देनी चाहिए। बाबा-वैरागी न केवल सोचकर बैठे रहे। उन्होंने सदाब्रत में सेवा देनेवाले श्रीहरि के आश्रित साधु-पार्श्वों को बहुत पीट। सदाब्रत के स्थान पर सामान तोड़-फोड़कर भारी ऊधम मचा दिया। श्रीहरि को खबर मिली किन्तु उन्होंने धीरज और दृढ़ता के साथ सदाब्रत जारी रखने के लिए आदेश पत्र लिख दिए। उन्होंने अपने संस्को समेत पत्र में लिखा था कि:

इस प्रकरण में आपाबों संवत् 1860 के प्रसंग दिए गए हैं।
‘यदि आपको कोई मारे, गालियाँ दे, अपमान करे, हमारा स्थान लूट ले, यदि हम मान सकते हैं तो कर्तव्य के कारण उपवास करना पड़े फिर भी सदाबहार की सेवा बंध मत करना। सच्चे साधुओं को सहनशील होना चाहिए। अनन्त मुनिश्वरों का कल्याण करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए, हमं क्षमाशील रहना चाहिए, निराश न होकर—पूर्वपूर्वक प्रभु समर्पण करते हुए सेवाकार्य जारी रखें।’ संतों ने श्रीहरि का आदेश शिरोधार्य करके सेवा के क्षेत्र पर ताले नहीं लगाए।

मणावदर में जमाण्देशी करके श्रीहरि भाड़ेर पथरे। यहाँ राजकुमार वाणीभाई और पातलभाई के यहाँ कपिला-क्षेत्री, दशहरा और अनंकुट उत्सव किये।

दूध से मीठी छांग

भाडेर एक छोटा सा गाँव है। यहाँ श्रीहरि के शिष्य पातलभाई नामक एक हरिभक्त परिवार के साथ रहते थे। उनके और उनकी पत्नी के हुदय में महाराज के प्रति अपर श्रद्धा का भाव था। वे सोच रहे थे कि श्रीहरि हमारे गाँव में पठारे हैं, पर्यंत वे तो बड़े—बड़े जमींदारों के यहाँ ठहरेंगे, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि प्रभु हमारे घर पठारे?

पर्यंत सर्वज्ञ श्रीहरि से उनका भाव कैसे छूटता? दूसरे ही दिन सुरूःदय के समय श्रीहरि सवयं पातलभाई के घर आ पहुंचे। छोटी सी झुगी में अंधकार फैला हुआ था। बरामदे में भी मामूली सा उजाला था। श्रीहरि अच्छी तरह से घर के बरामदे तक आ पहुंचे और पातलभाई के नाम की मुकार दी। वे तो खुशी के मारे पागल हो उठे। खिदिया डालकर उसने महाराज को आसन दिया। उनकी पत्नी आनन्द—फानन में दूध की बटलोई लेकर बरामदे में आ गई। उसने पात्र में दूध भरकर महाराज के सामने रख दिया। उसे पीते हुए, श्रीहरि ने कहने लगे, ‘वास्तव में दूध बहुत मीठा है, क्या इसमें शक्कर दाली है? या बकेन (बाकड़ी) भैंस का दूध है? लाईए, फिर एकबार पात्र भर दें।’

पातलभाई की पत्नी खुश हो रही थी। उसने कहा, ‘महाराज, यह तो घर की भैंस का दूध है, लीजिए।’ इतना कहती हुई उसने दुबारा पात्र भर
दिया। श्रीहरि ने तीन बार माँगकर दूध पिया। दूध की बटलोई खाली हो गई। अब क्या करें? उस स्थिति ने श्रीहरि के साथ आनेवाले हरिभक्तों के लिए छाच देने के लिए सोच लिया। वह रसोई में गई, छाच की बटलोई उठाई और देखा तो उसमें छाच के स्थान पर दूध दिखाई दिया। वह भारी दुखिया में पड़ गई, ‘अरे, मैंने क्या महाराज को दूध की जगह छाच पिला दी?’ उसे बहुत दुख हुआ, वह पछतावा करने लगी।

रोटे-रोटे श्रीहरि के पास आई, और श्राम माँगने लगी: ‘महाराज! मैंने आपको भूल से छाच पिला दी है, मेरा अपराध आप श्रमा कर दीजिए।’

श्रीहरि ने हँसते हुए कहा, ‘इसमें दु:खी होने की कोई बात नहीं है। मेरे मन तुम्हारी छाच भी दूध के बराबर ही थी, तुम्ने जो अल्यंत्र प्रेम एवं श्रंद्रा से पिलाई थी! हमें तो वह दूध से भी मीठी लगी।’ श्रीहरि ने उसका दु:ख मिटा दिया। वहाँ से बिना होकर श्रीहरि मोड़ गाँव पड़ारे। प्रबोधिती एकाद्षी का उत्सव करके अलैया तथा गोंडल होकर श्रीहरि बंधिया पड़ारे। यहाँ मूलभूत के घर उनका निवास था। दूसरे दिन सुबह भुज के दीवान सुन्दरजी बढ़ई श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे।

**सुन्दरजी बढ़ई की परिक्षा**

सुन्दरजी कच्चे के महाराज (राजा) के पुत्र की बारात लेकर निकले थे। गोंडल आने पर उन्हें खबर मिली कि भगवान स्वामिनारायण बंधिया में विराजमान हैं। उन्होंने बारातियों को कुछ समय के लिए गोंडल में रहने के लिए आदेश दिया, ‘आप इसी शहर में रहिए, मैं बंधिया कुछ काम से जा रहा हूँ, थोड़ी ही देर में लौट आऊँगा।’ इतना कहकर सुन्दरजी बढ़ई घोड़े पर सवार होकर मूलभूत के घर आ पहुँचे। अपनी पगड़ी उतारकर, सिर झुका कर, घुटनों के बल गिरकर उन्होंने श्रीहरि को प्रणाम किया।

श्रीहरि ने पूछा, ‘कौन है?’

‘महाराज! आपका दास।’ सुन्दरजी ने कहा।

श्रीहरि ने उनकी कसौटी लेने के लिए पूछा, ‘दास का लक्षण क्या क्या होता है?’

‘आज़ा के अनुसार आचरण करे वही दास।’ सुन्दरजीभाई ने कहा।
सुन्दरजी बढ़िया की परीक्षा

‘टीक है तो इसी समय आप सिर-मूँँ मुंडवाकर त्यागी बन जाओ और काशी के लिए प्रस्थान करो।’ श्रीहरि ने आदेश दिया।

सुन्दरजीभाई शूरवीर भक्त थे। उन्होंने तुरंत नाई को बुलवाकर मुंडन करवा दिया। त्यागी वेश धारण करके श्रीहरि के पास आकर दंडवत् प्रणाम किया।

यह देखकर निकट में बैठे हुए डॉसाभाई को श्रीहरि ने कहा, ‘डॉसाभाई, क्या आपको याद है जब रामानन्द स्वामी ने आपसे एक बार काशी की यात्रा का आदेश दिया था। आप भी इसी समय नंगे पैर, बिना कोई सामना लिए सुन्दरजीभाई के साथ चल निकलो।’ डॉसाभाई ने तुरंत श्रीहरि के चरण हुए और दोनों भक्त साथ-साथ काशी के लिए चल पड़े।

अभी दो दोस्त ही चले होंगे कि इधर श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी से पूछा, ‘स्वामी, हमने कैसा काम किया? राज्य के दीवान को साधु बना दिया।’

स्वामी ने कहा, ‘महाराज! अब तो हमें सारे कल्याण प्रदेश में मुसीबतों का सामना करना पड़ैगा। हमारे लिए उहरने का, निर्बंध सत्संग-प्रचार का यह एक ही सहारा था। अब तो हमारे बैठने की भाली ही कट गई।’

श्रीहरि ने चौककर कहा, ‘अच्छा! ऐसी बात है! तब तो घुड़सवार भेजकर उनको संदेश दो कि दोनों वापस लौट आएग।’

तुरंत ऐसा ही किया गया। सेवक ने दोनों को मार्ग पर चलते हुए देखा तो निकट जाकर कहा, ‘महाराज ने आप दोनों को वापस लौटने का आदेश दिया है।’

सुन्दरजी और डॉसाभाई बंधिया आ पहुँचे। सुन्दरजीभाई ने फिर एकबार घुटने टेककर श्रीहरि के चरण हुए, उन्होंने पूछा, ‘कौन आया?’

‘आपका दास।’ सुन्दरजी ने कहा।

‘दास का लक्षण क्या है?’ श्रीहरि ने वही प्रश्न दोहराया। सुन्दरजी ने भी वहीं उत्तर दोहरा दिया, ‘आजा के अनुसार जो आचरण करे वही दास।’

श्रीहरि ने कहा, ‘बहुत अच्छा, अब साधु के कपड़े उतारकर अपने गुहत्थी कपड़े पहन लो।’

सुन्दरजीभाई ने आदेश का पालन किया। महाराज प्रसन्न हुए और उनकी छाती पर अपने चरणारविन्द के चिह दिये। परंतु सुन्दरजी के मन में
अपने भक्तत्व का अहंकार जाग उठा। उन्होंने चित्र लेते हुए श्रीहरि से कहा, ‘प्रभु, आप ने मेरी ऐसी परीक्षा भरे ही ती, परंतु किसी और की मत लेना।’ उनके विचार में अहंकार की झलक पाकर श्रीहरि कुछ नहीं बोले। हैंसते हुए उन्होंने सुन्दरजी को चित्र दी।

रात्रि के समय सुन्दरजिबाई जब गोंडल लौट तब मुंडन देखकर बारती लोग सुन्दरजिबाई को पूछने लगे, ‘अरे, ऐसे शुभ अवसर पर आपने मुंडन क्यों करवाया? क्या अपशकुन के लिए?’

सुन्दरजिबाई ने कहा, ‘बंधिया में मेरे कुलदेवता का स्थान है। लड़के का विवाह निर्विन्न संपन्न हो, इसलिए तथा मेरा पाप नाम का चचेता भाई मर गया है, उसके अशीष की निवृत्ति के लिए मैंने मनोरंजन की थी, इसलिए मुंडन करवाया है।’

‘तब तो बहुत ही अच्छा।’ सबने कहा। इस तरह सबको युक्तिपूर्वक समझाकर सुन्दरजिबाई बारतियों के साथ आगे बढ़े।

मूलजी सेठ की रक्षा

‘महाराज! मेरे गाँव पथरिये।’ मेमका गाँव के मूलजी सेठ ने श्रीहरि से प्रार्थना की। परंतु उपस्थित हरिभक्त बोल उठे, ‘प्रभु! आप मेमका मत जाए। वहाँ मूलजी सेठ, हंसराज सुधार, श्यामो अगोलो और श्यामो कांसागरो इन चार को छोड़कर शेष सारा गाँव आपका देश करता है। वहाँ के लोग आपको बिना कारण पंजीकरण करेंगे।’

श्रीहरि ने मूलजी सेठ का सद्भाव और भक्ति देखकर कहा, ‘सेठ, आप जाकर तैयारी करें, हम आते हैं।’

श्रीहरि विचरण करते हुए कारियाणी होकर मेमका पथरायें। मूलजी सेठ ने पूरे भक्तिभाव के साथ श्रीहरि का अपूर्व स्वागत किया। यहाँ श्रीहरि ने तीन दिन तक निवास किया। मूलजी सेठ तथा अन्य हरिभक्तों ने श्रीहरि तथा संतों की अच्छी तरह सेवा की। विदा के समय चारों हरिभक्त एक कोस तक श्रीहरि को दिखाई दिये।

अलग होते समय श्रीहरि ने कहा, ‘सेठ! आप चारों हरिभक्त यथा श्रीप्रे मई गाँव को छोड़कर कहाँ और चले जाना। अपनी सारी सम्पत्ति
रघुनाथदास सत्संग से विमुख

लेकर, घर, जमीन आदि बेचकर बीस दिन के भीतर यहाँ से चले जाना। मेरे पाँच छूटकर यह प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरी बात मानोगे।’ चारों हरिभक्तों ने महाराज के आदेश से उनके पाँच छूटकर यह प्रतिज्ञा की।

हंसराजभाई खोलड़ियाद गए, अगलो और कांसागरो चाणपुर गाँव में चले गये। पद्मह दिन में मूलजी सेठ ने भी घर-जमीन बेचकर लीमली गाँव में निवास कर दिया। इक्किसब दिन गाँव में बाबाजी गायकवाड़ी सेना लेकर वहाँ पहुँचा। वद्वाण राज्य का गाँव समझकर उसने सारे गाँव पर कहर बरपा दिया। लूट चलकर कई घरों को खाक में मिला दिया। श्रीहरि ने अन्तर्यामी रूप से उन चारों हरिभक्तों की अपार रक्षा की।

रघुनाथदास सत्संग से विमुख

श्रीहरि विचरण करते हुए बोला, वर्तमान, जेतलपुर होते हुए अहमदाबाद पथराई। यहाँ नारायणगिरि गुसाई के मठ में उनका निवास था। यहाँ एकान्त स्थान में श्रीहरि भी प्रसन थे। अहमदाबाद के कुछ हरिभक्तों ने आकर रघुनाथदास के कृत्यों का वर्णन किया, जो कि रामदास स्वामी ने प्रत्यक्ष देखे थे। उन्होंने बताया कि रघुनाथदास ने कई लोगों के मन में सत्संग विरूद्ध जहर भर दिया है। अपना पश्च वन्तवण बनाने के लिए ही उसने छलकपट का सहारा लिया है। ऐसी बहुत सारी शिकायत सुनने पर भी श्रीहरि ने सोचा कि रघुनाथदास को शांतिपूर्वक समझाने पर यह जरूर शांत हो जाएगा।

एक दिन की बात है। वह अपने शिष्यों के साथ श्रीहरि के पास आ पहुँचा। श्रीहरि ने उसे एकान्त में बुलाकर गद्दी—तकिए के आसन पर बिठाया। बड़े आदर और प्रेम से बातचीत का प्रारंभ किया।

फिर कहा, ‘आप तो रामानन्द स्वामी के पुराने शिष्य हो, जानी और समझदार भी हो। इसीलिए आपको रामानन्द स्वामी के आदेशानुसार ही आचरण करना चाहिए। आप सारी इंजेक्ट बसों नहीं छोड़ देंगे? आप सत्संग में अग्रणी बनकर मुक्तानन्द स्वामी की तरह संतमण्डल के साथ देशभर में घूम सकते हो। सबको सत्संग महिमा कहो। प्रत्येक हरिभक्त को प्रसन करो। यदि आपको महत्त्वादेश चाहिए तो हम तुम्हें महत्त्व पद पर नियुक्त करने के लिए भी तैयार हैं। चाहो तो तुम अहमदाबाद के स्थायी
महत्त्व बन सकते हो।’

परंतु रघुनाथदास समाधान के लिए तनिक भी वैयक न था। वह तेजर
बदल कर बोला, ‘कल के आधे हुए तुम, हमें उपदेश देने वाले कौन होते
हो? तुम यदि अपना हित चाहते हो तो हमारी आज्ञा में रहो।’ इतना कहकर
वह चिंतकाने बहुत कुछ उल्टी-सीधी बकने लगा।

कुछ ही पलों में ‘जीवनमुक्ता कहाँ हैं, कहाँ हैं?’ चिंता हुई देखी,
वैरागियों की एक टोली मध में घुस गई, जो श्रीहरि को मारने के लिए आई
थी। दंडा, चिमटा, भाला, त्रिशूल धारण करके आए हुए वैरागी सीधे श्रीहरि के
कमरे में जा पहुँचे। श्रीहरि ने पलायन में परिस्थिति भाप ली। उन्होंने रामदासजी
को संबोधत किया। दोनों तुरंत उसी पल खड़े हो गये और दूसरे दरवाजे से बाहर
निकलकर देखते ही देखते मठ से अद्वैत हो गये।

रघुनाथदास को मिलते ही कहा हुआ है, ‘गदरी-तकिए के सहारे बेठा
रहा।’ उसे देखकर वैरागी मुखिया ने समझा कि यही जीवनमुक्ता है। उसने
चिंतकार आदेश दिया, ‘ये रहा जीवनमुक्ता! मारा दालो इसे।’

यह सुनते ही वैरागी रघुनाथदास पर टूट पड़े। जिसके हाथ में जो था
उसीसे मारे रहा था। सभी ने मिलकर रघुनाथदास की जमकर पिटाई की।
उसके शिष्य भी वैरागियों की झपट से नहीं बचे।

दूसरे दिन श्रीहरि ने बड़े-बड़े संतों और हरिभक्तों की इच्छानुसार
रघुनाथदास को सत्संग से विमुख करने की घोषणा की। अब सारा उपदेश
शान्त हो गया। रघुनाथदास के लिए लिखे गए आदेश पत्र में श्रीहरि ने
लिखवाया था कि जो कोई उस कुसंग फैलानेवाले का संग करेगा, उसका
भक्ति-भाव अवश्य खंडित होगा, अतः उस विमुख से दूर रहने में ही
आपकी भलाई है।

इस प्रकार अहमदाबाद में सत्संग सानुकूल वातावरण का निर्माण करके
श्रीहरि भुज की ओर पढ़ो।

लालजी बढ़ई को दीक्षा दी

श्रीहरि अहमदाबाद से हजारों होकर भाद्रा पढ़ाई। एक दिन संध्या के
समय वशारम बढ़ई अपने खेत में खुदाई कर रहे थे। उन्होंने देखा कि खेत
लालजी बढ़ई को दीक्षा दी

को मेहर पर चीटियों ने मिठी का छता बना लिया था। जहाँ लाखों चीटियों
इधर-उधर चूम रही थी। यह देखकर वशामभाई ने सोचा कि, ‘अहो, आज
जब धरती पर साक्षात् पुरुषोत्तम नामायण तथा उनका ब्रह्मधाम प्रत्यक्ष
बिराजमान है परंतु इन धुंध जीवों को उनका संपर्क कैसे होगा। और इन
जीवों का कल्याण कैसे होगा? यदि मेरे पास साम्य होता तो अभी इन
चीटियों को बैंकुंट में भेज देता।’ वे ऐसा सोच ही रहे थे कि हजारों दिव्य
विमान उनके सामने वहाँ उतरने लगे। सभी चीटियाँ शरीर छोड़कर दिव्यधेर
धारण करके बैंकुंट में जाती दिखाई देने लगी।

वशामभाई आक्रमवत देखते रहे। उन्होंने उसी दिन यह बात श्रीहरि
को बताई, ‘महाराज, चीटियों का ऐसा कौन–सा बड़ा भाग्य होगा कि उन्हें
बैंकुंट की प्राप्ति हुई?’

श्रीहरि ने कहा, ‘इसमें कोई नई बात नहीं है। अक्षर तथा पुरुषोत्तम के
प्रकट स्वरूपों का यह प्रताप है। आज तो तुमने यदि यह संकल्प किया होता
कि चीटियों अक्षरधाम में जाएं, तो वे अक्षरधाम में भी चली जातीं। ऐसा
अक्षर एवं पुरुषोत्तम के प्रकट स्वरूपों का बल है। और! तुम ने संकल्प
किया होता तो सारे ब्रह्मांड के जीवों का भी कल्याण हो जाता।’

आज हरिभक्तों के साथ मूलजी शर्मा भी श्रीहरि के दर्शन के लिए
आये थे। उन्होंने श्रीहरि को दण्डवतु प्रणाम किया। तब किसीने पहचान
करते हुए कहा, ‘प्रभु! ये मूलजी नये सत्संगी हैं’

तब श्रीहरि ने कहा, ‘ऐसा तो आप समझते हैं परंतु ये तो अनादि काल
से सत्संगी हैं, हमारे रहने का अक्षरधाम है। ये तीनों अवस्थाओं में हमारी
मूर्ति का अखण्ड दर्शन करते हैं।’ श्रीहरि की इस दिव्यवाणी को समझने के
लिए उस समय एक भी हरिभक्त समर्थ नहीं था।

भादरा में वसंतपंचमी का उत्सव धूमधाम से मनाकर श्रीहरि शेखापाट
पधारे। वहाँ लालजी बढ़ई के घर उनका निवास था।
एक दिन श्रीहरि ने लालजी को कहा, ‘हम कच्च जाना चाहते हैं।
साथ चलनेवाला तुम्हें जैसा कोई मार्ग का जानकार मिलेगा?’
लालजी बढ़ई ने कहा, ‘महाराज! यदि मैं ही आपके साथ चलूँ तो?’
श्रीहरि ने तुरंत संमति दी।
लालजी पानी, पैसे और खाने की कुछ चीजें लेकर तैयार हो गए। दोनों कच्चे की ओर चल दिए। मार्ग में एक भिक्षुक मिला। श्रीहरि ने तमाम खाद्य सामग्री उसे दिलवा दी। फिर एक घासा आदमी मिला। प्रभु ने लालजी के पास जो पानी था, उस घासे को पिला दिया। आगे चलकर कुछ चीज मिले। श्रीहरि ने लालजी के पास कच्चे सिक्के थे, सभी चीजों को दिलवा दिए। अब लालजी के पास कुछ भी नहीं बचा। न पानी, न पैसा, न भोजन। आगे जब लालजी को घासा लगी तब श्रीहरि ने रण में समुद्र के खारे पानी से मीठा जल पिला दिया और जब दोनों आघोरी गाँव की सीमा तक पहुँचे, तब लालजी को आदेश देते हुए श्रीहरि ने कहा आप ‘हमारे लिए भिक्षा ले आई’ परंतु यह तो लालजीभाई की ससुराल थी। उनको भिक्षा के लिए जाने में कठिनाई महसूस हो रही थी। परंतु श्रीहरि ने उनका गृहस्थी वेष उतरवाकर उसी फल भागन्ती दीक्षा दे दी और नाम बदलकर स्वामी निष्कृतानन्दजी रखा। श्रीहरि के लिए उन्होंने अपने ससुर के घर जाकर भिक्षा की आह्लाद जगाई। इस प्रकार किसी न किसी निमित्त श्रीहरि, मुक्तों और मुस्तुकों को अपने आध्यात्मिक अभियान में जोड़ रहे थे।

कारियाणी और गढ़ड़ा में पद्धरवनी

सर्वार में श्रीहरि ने जन्मार्ग, दशहरा तथा अन्नवीकसण किये।

संवत 1861 (सन् 1894) के कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन श्रीहरि प्रथम बार कारियाणी पढ़े। यहाँ मांचा भक्त के भाई वस्ता खाचर के घर श्रीहरि का निवास था। मांचा भक्त रामानंद स्वामी के शिष्य थे। श्रीहरि ने देखा कि इस गाँव में लोग पानी के कारण तरस रहे हैं। उन्होंने निश्चित किया कि गाँव में तालाब और कुएं का निर्माण कार्य प्रारंभ हो। उन्होंने तुरंत यह कार्य का प्रारंभ कर दिया। संतो-हरिभक्तों के विशाल समुदाय को गाँव के बाहर एक विशाल तालाब के निर्माण कार्य में लगा दिए। बीदास भगत के पुत्र की वर्यात्रा में शामिल होकर उन्होंने घर-घर संपर्क करके लोगों को इस सेवाकार्य में शामिल किया। सामाजिक सेवा के क्षेत्र में यह उनका प्रथम कदम था।

इस प्रकरण में आपाती संवत 1861 के प्रसंग दिये गये हैं।

[ 4 ]
कल्पित भय एवं वहम से मुक्ति

गद्दू के ठाकुर साहब एभल खाचर परिवार के साथ कारियाणी पधारे थे। उन्होंने प्रार्थनापूर्वक श्रीहरि से निवेदन किया कि प्रभु! आप हमारे यहाँ गद्दूपुर पधारने की कृपा करें। श्रीहरि ने उनका निमंत्रण स्वीकार करते हुए सं. 1861 (सन् 1805) माह शुक्ला एकदशी के दिन गद्दूपुर के लिए प्रस्थान किया। यह उनका प्रथम आगमन था। पूर्वोत्तर तक से लेकर श्रीहरि ने गद्दूपुर को ही अपना प्रधान निवासस्थान बना लिया।

वे कहा करते थे कि, ‘गद्दूपुर मेरा है, और में गद्दूपुर का हूँ।’ एभल खाचर और परिवार भी श्रीहरि के साथ भक्तिपूर्ण सम्पर्क से जुड़ा हुआ था। उन्होंने कहा था कि, ‘हे महाराज, आप हमारे जीवनप्रगति हैं। आप कभी हमें छोड़कर कहीं मत जाना।’ ऐसा शरणागत भाव देखकर प्रभुने प्रसन्न होकर उनकी छात्री पर अपने चरणार्थविद स्थापित किये..।

गद्दूपुर में वे प्रारंभिक दिनों में एभल खाचर के भाई जीवकार्य के दरबार भुवन में रहे थे, जहाँ पुष्पदल एवं रामनवमी का उत्सव भी किया था।

[ 5 ]

कल्पित भय एवं वहम से मुक्ति

वह कल्पित एवं मलिन देव-देवियों की उपासना का उपाय था। लोग धूर्त बाबा-बेंगरी और ओझः-फकीरों की नागरपाँस में फंसे हुए थे। अंधश्रद्धा के कारण और मलिन देवी-देवता के खौफ़ से लोग वहम, शुकुन-अपशुकुन तथा भय के वातावरण में जी रहे थे। बीमारी के समय चिकित्सा के बदले झाड़ूक करवाना, जंतर-मंतर और मूठ देने के प्रयोगों में प्रतीत रखना आदि निर्विन मानसिकतावाली प्रजा की मानो जीवनशैली बनी चुकी थी।

इसी बातों के उल्लोहे और फकीर, लोगों के फंसे लूटकर मौज उड़ाते थे। श्रीहरि ने ऐसी असह्य परिस्थिति को समझ करने का निर्देश किया। वे अपने आश्रित लोगों में नीति, धर्म एवं भगवान की शरणागतिका का बल संचारित करने लगे। देवी देवताओं के कल्पित भय और जंतर-मंतर एवं झाड़ूकू का भरोसा किया के लिए उन्होंने स्वयं एक ऐसा अभियान चलाया कि प्रजा में स्वतः जागृति आने लगी। उन्होंने सभी सत्संगियों को एक पत्र लिखा, जो इस प्रकरण में आपाधी संबंध 1862 के प्रसंग दिए गए हैं।
इस प्रकार से था:

‘अन्तर्देश से (अक्षरधाम से) लिखाविंत स्वामी श्री सहजानन्द स्वामी महाराज के सभी बाई-भाई को नारायण स्मरण। विशेष लिखना यह है कि ममुख्य देख में जीवात्मा को अपने प्रारंभ के अनुसार सुख और दुःख मिलता है तथा जन्म एवं मरण होता है। जीव के प्रारंभ कर्म का उल्लंघन करके रह, भैरव, भवानी आदि देवी-देवता भी जीव को सुख अथवा दु:ख, जन्म अथवा मरण दिलाने में समर्थ नहीं हैं।

‘अतः प्रारंभ कर्म और काल को मिथ्या करने, मुद्दे को जिलाने और जिन्दा व्यक्ति को मारने में केवल परमेश्वर नारायण ही समर्थ हैं। पिता उनके अन्य किसीं ऐसी शक्ति नहीं है। हम सब भगवान के भक्त हैं, शूरवी हैं। इसलिए हरिकांतों को मन में किस प्रकार का भय नहीं रखना चाहिए।

‘यदि कोई व्यक्ति जंतर-मंतर और डोरे-धागे से जीवित रह सकता, तो पृथ्वी पर कोई व्यक्ति तो अमर दिखाई देता। परंतु आज तक ऐसा कोई दिखाई नहीं देता।

तंत्र विद्या के द्वारा कोई व्यक्ति अपने विरोधियों को मार डालने में समर्थ होता, तो राजा-महाराजाओं के तो अनेक विरोधी हैं, वे जीवित ही न रह पाते। और यदि जंतर-मंतर से कार्य-सिद्ध हो सकती तो ये राजा- महाराजा लाखों रूपे खर्च करके अनेक शस्त्र क्यों एकत्रित करते हैं? तथा बड़ी बड़ी सेनाएँ क्यों रखते हैं? एक अच्छे-खास मंत्र-शास्त्री को रख लेते, जो मंत्र-तंत्र की शक्ति के द्वारा शातुओं का सफाया कर देते!

‘लेकिन ऐसा न कही सुना गया है, न कही देखा गया है। परम्परा भगवान पुरुषोत्तम ही समर्थ हैं, उनकी शरण में रहकर, निर्भय होकर नारायण का भगन करना।’

इस प्रकार श्रीहरि ने परमेश्वर के आश्रय का, विशुद्ध धार्मिक जीवन जीने का उपदेश जारी रखा। उनकी शरण में आनेवाले लोग निर्भीक बनने लगे। इसीलिए भगवान स्वामिनारायण के आश्रित सत्संगी काल-कर्म, ओझा-फकीर, भैरव-भवानी, कल्पित देवी-देवता, बीर-पीर, डुंगी-यति, डोरा-धागा, शकुन-अपशकुन आदि किसी भी बहम या अंधश्रद्धा के कारण कभी डरते नहीं। उनको सर्वोपरि भगवान की प्राप्ति का गोरव रहता है।
श्रावणी अमावस के दिन श्रीहरि कच्चे के धमड़ का गाँव में हैरजीभाई के घर पथरे। यहाँ प्रबोधिनी एकादशी के बाद उन्होंने पुराणी प्रागाजी देवे द्वारा दो महीने तक भागवत की कथा करवाई। गाँव-गाँव विचरण करके हरिभक्तों को अपने स्वरूप का निश्चय करवाया।

फिर उत्तर गुजरात के दंडवाय व्रेष्ट में आकर अड़ालज होकर सिंधुपुर पठारे। यहाँ तीन दिन तक उत्सव किया। तथा श्रीष्वाभोज से ब्राह्मणों को तृप्त किया। अब उनका मुकाम गढ़पुर में था।

वासुदेवनारायण की प्रतिष्ठा

एभल खाचर की पुज्यियाँ जीवना और लाडुबा को श्रीहरि ने कहा था कि में संत-समाज के साथ अब यहाँ रहूँगा। इन दोनों भक्तिमती बहनों ने भी यह सुनकर नियम ले लिया था कि प्रतिदिन श्रीहरि को भोजन देने के बाद ही वे भोजन करेंगी।

परंतु एक दिन श्रीहरि विचरण के लिए जाने को तैयार हुए। तब पांतुबा, जीवना, लाडुबा और नानबाई ने कहा, 'प्रभु! आपने तो यहाँ निरंतर रहने का वचन दिया था, अब आप जाने की क्यों कहते हैं?'

श्रीहरि ने कहा, 'विचरण में तो जाना पड़ेगा परंतु में आप लोगों से कभी अलग नहीं होऊँगा।' इतना कहकर उन्होंने एक सुन्दर प्रतिमा का दरबारभूवन में स्थापन करने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीहरि की इच्छा से एक मुक्तपुरुष दो स्थाम मूर्तियाँ लेकर दरबार भूवन में बेचने के लिए आ पहुँचा। जब लोग मूर्तियाँ देख रहे थे तब मुक्तपुरुष ने कहा कि में घेला नदी में न्यान करके आता हूँ। तब तक सौदा तय कर लें। इस प्रकार स्नान के बहाने मुक्त पुरुष वहाँ से अदृश्य हो गये और वापस कभी नहीं लौटे।

श्रीहरि ने कहा, 'इन्हें हमारी ही मूर्तियाँ समझें। हम उन्हें 'वासुदेवनारायण' कहते और उनके द्वारा हम यहाँ विराजमान होंगे।'

इतना कहकर श्रीहरि ने उत्तर की ओर के दरवाजे बाले कमरे में संवत 1862 (सन् 1806) फालुगु कृष्णा द्वितीया-शुक्रवार को बड़ा उत्सव करके शिवराम भट्ट नामक विद्वान द्वारा विधिविधान करवाकर उन
अच्छे पदार्थों का त्याग

एक दिन काठियों ने गढ़पुर में श्रीहरि को एक लाड़ा भेंट किया। वे कुछ दिन तक उसका उपयोग करते रहे। एक दिन कुछ काठियों ने कहा: ‘महाराज! यह तो रोजा घोड़ा है, सारे सौराष्ट्र में इसकी बराबरी का घोड़ा मिलना कठिन है।’

श्रीहरि ने कहा, ‘तभी इस सर्वोत्तम कहा जाता है!’ उन्होंने यह बात ध्यान में रख ली। संध्या के समय वे घोड़े पर सवार होकर स्नान के लिए नदी पर गये। वहाँ जलश्रीदा का अदभुत आनंद उठाया। स्नान के बाद वस्त्र बदल गए थे कि उनकी दुःख एक भिक्षुक ब्राह्मण पर पड़ी। उसको अपने व्यावहारिक प्रसंग के लिए धन की आवश्यकता थी। अन्तर्यामी श्रीहरि ने उसका दुःख भीप लिया। वे घोड़े की लगाम पकड़कर उसके पास गये और चुपचाप घोड़ा उसके हाथ में अर्पण करके बोल उठे, ‘श्री कृपाणपण।’

काठी दरबारों के हदय में यह देखते ही हाहाकार होने लगा वे निःशास्त्र जिस स्वास्ति निकालने लगे, ‘अरे महाराज, ऐसा क्यों किया?’

श्रीहरि ने कहा, ‘अत्यंत रमणीय पदार्थ जीव का बन्धनकार है, हम उत्तम पदार्थ रखनेवालों में नहीं हैं।’

अश्चयप्रय काठियों को बहुत दुःख हुआ, उत्तम अश्च उनके लिए पुत्र से भी अधिक प्रिय होता है। सभी दो दिन तक उदास रहे। परंतु आखिर उनको जीवनमंत्र मिल गया कि त्याग ही सुख का स्रोत है।

श्रीहरि गढ़पुर से जेठलपुर बोचावण, वरताल होते हुए बुधजे पढ़ाए। यहाँ भी पानी की समस्या देखकर उन्होंने विशाल ‘हरितलाब’ खुदवाकर
पूर्वकर्म का प्रारंभ किया।

मूलुखाचर की व्यसनमुक्ति

स्वामिनारायण समस्त जीवन की प्रत्येक उन्नत तंत्र समाज के रूप में होती जा रही थी। साधुओं और सत्संगियों के आचरण का समाज में अद्वैत समादर था। उन्होंने लोगों को प्रेम से वशीभूत करके जीवन में जमे हुए दुःस्वर, दुराचार एवं दुर्भिक्षा से निकालकर एक नये वातावरण में रख दिया था।

कर्तव्यों को छोड़ दिना निर्भय होकर उन निर्यातनी होते जा रहे थे।

खंभाला गाँव के गारसिया जाति के मूलुखाचर, श्रीहरि के दर्शन के लिए आये थे। श्रीहरि ने जब उनको सत्संगी होने के लिए कहा, तो मूलुखाचर ने कहा कि, ‘महाराज! मुझे अफीम और हुक्के का व्यसन है, यह दोनो व्यसन छूट नहीं सकते।’

श्रीहरि ने उनको प्रेणण देते हुए कहा, ‘ऐसी कोई बात नहीं है, जो हम नहीं कर सकते। आप व्यसन मुक्त होने का प्रयत्न करते रहना, फिर भी यदि व्यसन नहीं छूटेगा तो कोई बात नहीं। आप वर्तमान धारण करके सत्संगी तो बनो। कम से कम पौंच वर्तमान-अर्थात पौंच निम्नों का पालन करते रहना।’

मूलुखाचर की हिम्मत जाग उठी, वे तुरन्त वर्तमान धारण करवाकर सत्संगी हो गए।

मूलुखाचर जब तक गढ़ड़ में रहे, कथा समाज होने के बाद वे हुक्का गुड़गुड़ते और अफीम का स्वाद भी लिया करते। एक दिन श्रीहरि ने कहा, ‘मूलुखाचर! हम संघ लेकर बरताल उत्सव में चलते हैं। आप अवश्य आना। आपको गुजरात का आत्यंतिक क्या है, मालूम हो जाएगा।’

वे तुरन्त सहमत हुए। संघ एक के बाद दूसरे गाँवों से गुजरते लगा। बीच-बीच में विश्राम के लिए किसी गाँव की चौपाल में अथवा रहावन पर भोजन आदि भी होता रहता। उसी समय मूलु खाचर समय निकालकर हुक्के के दम लगा देते।

सारा गाँव संघ को देखने आता तब हुक्के वाले मूलुखाचर को देखकर इस प्रकरण में आपात संवत 1863 के प्रसंग दिये गये हैं।
भूमि की उलझन मिटाई

श्रीहरि ने जन्माष्टमी का उत्सव अगतराई में करने का निश्चय किया। अगतराई में पर्वतभाई के घर उनका निवास था। पर्वतभाई ने उत्सव के लिए अपना अनन्ददार खोल दिया था। श्रीहरि ने भी काठियों को गुड़ चावल के साथ धारावतु ची परोसकर प्रसन कर दिया। पर्वतभाई श्रीहरि को यह लीला देखकर खुशी से नाच उठे थे। काठी भक्तों को श्रीहरि ने पर्वतभाई की
महिमा परोक्ष रूप से समझ दी। जम्मू-कश्मीर के पश्चात् कुछ दिन ठहर कर श्रीहर ने गढ़ड़ा लौटने का निश्चय किया।

एक दिन वे भोजनादि से निवृत्त होकर बैठे थे कि माणावदर गाँव के मयाराम भट्ट श्रीहर को बंदन करने के लिए आ पहुँचे। ‘भट्टजी! गढ़ड़ा चलिए, आपको वहाँ अनन्तूक उत्सव का लाभ देंगे।’ श्रीहर ने कहा, भट्टजी कुछ असंकेत में पड़ गये।

‘क्या सोच रहे हो, भूदेव?’ श्रीहर ने पूछ लिया।

भट्टजी ने कहा, ‘प्रभु, बात यह है कि इस वर्ष बाजरे की फसल बहुत अच्छी हुई है। कटाई का समय हो गया है। यदि में गढ़ड़ा चलूँ तो सम्भव है कि वापस लौटने पर एकाध दाना भी न मिले।’

‘अब समझ में आया। परंतु भट्टजी कटाई के लिए हम मदद करेंगे तो?’

‘तब तो अवश्य चलूँगा। प्रभु, आपके साथ अनन्तूक मनाने का नन किसे नहीं दिना?’

महाराज ने तुर्क पर्वतभागी द्वारा सारे हरिभक्तों के घरों से दंतये मंगवाई, दोपहर होते ही पचास-साठ हरिभक्तों का संघ लेकर वे भट्टजी के खेत पर पहुँच गये। संतों और हरिभक्तों के साथ स्वयं श्रीहर भी फसल काटने लग गये। सूर्यास्त के पहले ही कटाई संपूर्ण हो गई। गढ़रिया बाँधकर, बेलगड़ी में डालकर सारा बाजरा भट्टजी के घर डालवा दिया। दूसरे दिन सुबह भट्टजी भी महाराज के साथ गढ़ड़ा रवाना हो गये।

बालहत्या बन्द करवाई

अज्ञान, अंद्रश्वाद और आर्थिक कठिनाइयों के कारण उस समय में कुछ कुरकितियाँ प्रचलित हो गई थीं। श्रीहर ने उन कुरकितियों को दूर करने का संकल्प किया। राजपूत, काठी और गिरास्तार जातियों में कन्या के पैदा होते ही दूध में मुंह डबोकर मार डालने की कुप्रथा थी। इस कुप्रथा का एक कारण यह था कि कन्या के विवाह में विरोध खर्च कर जाता था। उनको देहेज बहुत देना पड़ता था। श्रीहर ने अपने आश्रित काठी एवं राजपूत हरिभक्तों में यह कुप्रथा बन्द करवाई। इससे पूरे क्षत्रिय समाज में भारी खलबली मच गई।
श्रीहरि बंधिया में विराजमान थे। कुछ काटी-राजपूत उनके दर्शन के लिए आये। उनके मन में कुछ प्रश्न थे। वर्तमान सामाजिक प्रवाह के विरुद्ध श्रीहरि ने जिस कृप्तियाँ को बंद करवाया था, उसके विषय में कुछ परामर्श के लिए वे उपस्थित हुए थे।

उनको उपदेश देते हुए श्रीहरि ने कहा, ‘कन्या को इस प्रकार मार डालने से तीन प्रकार की हत्या का पाप लगता है। स्वजन की हत्या का पाप, बालक्ष्य का पाप और स्त्री हत्या का पाप। आपको ऐसे कुकृत्य न करना चाहिए। ऐसे महापाप से बचकर भगवान से डरते रहो।’

परंतु उन लोगों ने कहा, ‘प्रभु! क्या करें, लड़की के विवाह में बहुत खर्च होता है, जो हमारी शक्ति से बाहर है। हम इतने पैसे कहाँ से लाएं? लड़कियों के पैदा होते ही मारते हैं, यह हमारी मजबूती है।’

श्रीहरि ने कहा, ‘मैं आपको वचन देता हूँ कि कन्याओं के विवाह के लिए आप लोगों को जिन्हें धन की आवश्यकता पड़ेगी, उन्हें धन जमा करके आप लोगों को देंगे। परंतु इस कृप्तिया को तो आपको मिटाना ही पड़ेगा। क्योंकि यह तो बहुत घृणित पाप है।’

श्रीहरि के आधारण के सामने क्षतिग्रस्त के कोई तरह टिक नहीं पाए। एक राजपूत ने लोकलाज का प्रश्न उठाते हुए कहा कि ‘हमारी जाति में युवा लड़के व्यसन एवं दुराचारी होते हैं, यदि कोई पैसा भी देता है तो भी हम अपनी कन्या को ऐसे-ऐसे के साथ विवाह करके अपने मान-सम्मान का नीलाम नहीं करना चाहते।’

श्रीहरि ने पलंग पर हाथ मारते हुए सतावाही स्वर में भविष्यवाणी करते हुए कहा, ‘जब हम तुम्हारा इतना दयत्व ले रहे हैं, तो क्या तुम्हारी कन्याओं के लिए अच्छे चरित्रवान लड़के हम निर्माण नहीं करेंगे? भगवान पर भरोसा रखो तो वे तुम्हें सम्भाल लेंगे। अगर हमारा यह आदेश नहीं मानने तो यद रखो, तुम्हारी लड़कियाँ जंगलियों के साथ ब्याह हो जाएँगी। अब ऐसा राज्य (अंग्रेजों का) आ रहा है, जो कानून और सत्ता के द्वारा तुम्हारा लुटपट का भ्रष्टा बना करवा देगा और वे सारी कृप्तियाँ को समाप्त कर देगा। उस समय पराधीन होकर जबरदस्ती से यह सब छोड़ना पड़ेगा। हाथ में माला लेने का समय आयेगा। तब तुम्हारी एक न चलेगी। में
सतीप्रथा का अन्त

फिर से कहता हूँ, मेरी आज्ञा मानकर मेरी प्रसन्नता प्राप्त करो। माला लेकर भगवान का भजन करो, वे तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे।'

क्षत्रियों के अन्तःचक्षु खुल गये। श्रीहरि की बात पर उन्हें विश्वास हुआ। आज्ञापालन का उन्होंने वचन दिया। हुआ भी ऐसा ही, अंग्रेजी सत्ता सूरत से गुजरात और सौराष्ट्र की ओर फैलकर धीरे-धीरे सर्वत्र छा गई।

उस युग में सती-प्रथा प्रचलित थी। बंगाल, बिहार की ओर यह प्रथा जोरों पर थी। गुजरात के सौराष्ट्र प्रभाग में काठी, गारसिया और राजपूत जातियों में सती-प्रथा का प्रचलन था। श्रीहरि ने प्रथम उन्हें प्रेमपूर्वक वश में किया बाद में उन्होंने उनके सामाजिक जीवन में प्रवेश किया। इस प्रकार वे लोककल्याण के लिए एक एक कदम बढ़ाते गये।

अबला स्त्रियों पर बलपूर्वक लादी गई इस तासदायक कुप्रथा के सामने श्रीहरि ने क्रांति जगाई।

उन्होंने सतीप्रथा का केवल खण्डन ही नहीं किया, वरन् अपने आश्रित क्षत्रियों में से यह कुप्रथा बिलकुल समाप्त कर दी। उन्होंने यह क्रांति बलप्रयोग अथवा धमकी से नहीं की। अपितु प्रेम, समझौता और शुद्ध तर्क के द्वारा की थी। लोगों को उन्होंने इस कुप्रथा के विरुद्ध शास्त्रीय प्रमाण देकर जाग्रत किया।

श्रीहरि उपदेश देते हुए कहते कि ‘पति के मृत्यु के बाद स्त्रियों को सती होने के लिए मजबूर करना अलग-ही घृणित प्रथा है। स्त्रियों को भी इससे आत्महत्या का पाप लगाता है। हमारा अभिप्राय यह है कि तीर्थ की महिमा समझकर, पति के प्रति मोहांथ होकर अथवा सामाजिक लज्जा के कारण सती होकर ‘आत्महत्या’ नहीं करना चाहिए। पुरुषों को भी हमारा आदेश है कि वे किसी भी स्त्री को सती होने के लिए प्रेरित न करें और न तो उनको सती होने के लिए मजबूर करें। क्योंकि वह पाप स्त्रीहत्या के बराबर है। समझदार एवं प्रबुद्ध स्त्रियों को तो अपने पति की मृत्यु के बाद बिना हताश हुए परमेश्वर के ही प्रतिभाव से सेवा करनी चाहिए। एक परमेश्वर के प्रति पतिव्रता के समान अविचल टेक रखते हुए अपने भाई-
पुत्र-पिता अथवा श्रस्त्र की आज्ञा में रहकर प्रभु भक्ति करते रहना। क्योंकि सती होने से मोक्ष तो नहीं मिलता बल्कि आत्महत्या के कारण जीवात्मा की अधोगति होती है। इसलिए दुर्लभ मानव शरीर की प्राप्ति हुई है तो मोक्ष सिद्ध प्राप्त करना यहीं हमारा उपदेश हैं।

इस कुप्रथा के साथ-साथ उन्होंने विधवा स्त्रियों को ‘संड’ कहने की आदत भी बंद करवाई। भक्तमय जीवन बितानेवाली विधवा स्त्रियों को ‘सांख्ययोगी स्त्रीयाँ’ कहकर उन्होंने उनका सामाजिक सम्मान बढ़ाया। मुक्तानन्द स्वामी को ‘सतीगीता’ नामक ग्रंथ रचने का आदेश देकर महाराज ने सती शव की सच्चा अर्थ नये स्वरूप में समाज के सामने रखा।

परमहंस दीक्षा

महाराज ने धोराजी में फल्युन शुक्ल पूर्णिमा का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। रामानन्द स्वामी के देदोखल के बाद श्रीहरि हमेशा श्रेष्ठ वस्त्र, भगवा उत्तम और दोपी पहनते थे। धर्मधुरा धारण करने पर भी उन्होंने मूल्यवान वस्त्र-अलंकार धारण नहीं किया था। परस्तु धोराजी में पूर्णिमा के दिन सूरत के प्रेमी हरिभक्तों ने अत्यंत भक्तिपूर्वक श्रीहरि को प्रथम बार जरी के वस्त्र, सुरवाल, आश्विन आदि अर्पण किया और मुकुट धारण करवाया, सुशोभित झूले में झूलाया और श्रीहरि ने भी ब्राह्मणों को भोजन तथा दान से तृप्त किया।

वहाँ से श्रीहरि जुनागढ़ पधारे। यहाँ हरिवनसी-चैत्र शुक्ला नवमी का उत्सव मनाया तथा कालवाणी में भीम एकादशी का उत्सव किया।

विचरण के लिए गाँव-गाँव घूमते हुए संतवृंद कालवाणी आ चुके थे। श्रीहरि ने सभी संतों से विचरण की खबर पूछी। संतों ने श्रीहरि के समक्ष अपनी दुःखद दास्तानें मुनाई व के स्थान पर वैरागी लोग किस प्रकार लूटपाट करते हैं और मार-पीट करके कैसा कहर बसाते हैं। उन्होंने कहा, ‘महाराज! संन्यासी-वैरागियों ने हमें हर गाँव में गालियाँ दी। हमें लूट लिया, जनेऊ एवं माला तोड़ डाली, पूजा-सामग्री को नष्ट की, आदि प्रभु, हम ये बातें तो सह सकते हैं, परस्तु जब वे अपनी चेलियों को हमसे हमारे पीछे भगाकर हमारा ब्रह्मचर्य भंग करवाने के लिए ऊदम मचाते हैं। यह
भूलजी भक्त की महिमा

हमसे सहन नहीं होता।’ संतों के काप्त सुनकर श्रीहरि बहुत दुखी हुए।

संतों को गाली, अपमान, तिरस्कार और मारपीट का दुख नहीं था,
लेकिन स्त्रियों के द्वारा उपस्थित होनेवाली हरकतों से वे अत्यंत परेशान थे।
बाबा ने जान-बूझकर संतों के पीछे अपनी चेलियाँ दौड़ते। वे संतों का
स्पर्श करके, उनकी सामग्री नष्ट करवाते यह सब सुनकर श्रीहरि कहने लगे,
‘अब में आप सभी को ऐसा परिवेश धारण करने की आज्ञा करता हूँ, जिससे
किसी के लिए आपकी पहचान होना आसान नहीं होगा।’

इस प्रकार भीम एकादशी की रात को श्रीहरि ने एक साथ पाँच सौ
संतों को शिखासूत्र का लागू करवाकर संविनास-धर्म की परमहंस दीक्षा दे
दी। मानसीपुजा का आदेश दिया। अलफ़ी पहनकर साधुओं को आदेश
दिया कि कंठी, माला, पूजा तथा तिलक आदि बाह्य चिह्न समाप्त करें। और
संसार में अलक्ष्यपूर्ण से विचित्रण करें।

केवल 26 वर्ष के युवा धर्मस्थापक में ऐसा कौन-सा आकर्षण था कि
जिसके कारण बड़े-बड़े संत जो कि बरसों से वर्णश्रम धर्मानुसार साधु के रूप
में रहते थे, वे शिखासूत्र का लागू करके परमहंस संविनास बन गये। विश्व के
धार्मिक इतिहास में यह बिलकुल अनोखा और अद्वितीय प्रसंग था। इस
विलक्षण परिवर्तन के बाद भी किसी साधु ने विरोध नहीं किया। हर कोई
श्रीहरि के आदेशों को ब्रह्माव्यक्त समझकर श्रीहरि के आदेश का अनुसरण कर
रहे थे। यही घटना श्रीहरि के दिव्य व्यक्तित्व की सूचक बन गई।

श्रीहरि ने इसके उपरांत भी आदेश देते हुए 114 आज्ञाओं का अनुरुप
करवाया। देखिए, यहाँ कुछ विशिष्ट आज्ञाओं का सिलसिला: ‘लाल वस्त्र
(स्त्री का) देखने में आये तो उपवास करना’, ‘पाँव फेलाकर सीना नहीं’,
‘ध्यान करते हुए सर्प या बिच्छू काटे फिर भी स्थिर रहना’, ‘सर्दी के दिनों
में भी मटके के ठंडे पानी से नहाना’ – इत्यादि कठिन आज्ञाओं के प्रकरण
चलाये। फिर भी सभी परमहंस गौरूंत पत्तरा के साथ खुशी से उन आदेशों
का पालन करते रहे।

भूलजी भक्त की महिमा

श्रीहरि भादरा पढ़ाये थे। एक दिन उन्होंने गांव के बरिष्ठ सतंगी
वशरामभाई से पूछा, ‘आज हमारे भोजन की बारी किसके घर हैं?’

वशरामभाई ने कहा, ‘महाराज, आज तो मूलजी शर्मा के घर भोजन हैं।’

‘ठीक हैं, चलो हम मूलजी के यहाँ जाएं।’ श्रीहरि ने कहा। जब वे मूलजी भक्त के घर पधारे तब मूलजी खेत पर गये थे। उनकी माता साकरबा ने आसन बिचकार श्रीहरि को बिठाया। वशरामभाई, झुसाभाई, रतनाभाई आदि हरिभक्त श्रीहरि के समक्ष सभा के रूप में बैठ गये।

अनचाल श्रीहरि ने साकरबा से पूछा, ‘माँ, तुम्हारे मूलजी हमें कभी याद करते हैं कि नहीं?’

‘अरे महाराज, उसकी तो बात ही क्या कहूँ। वह तो सूर्योदय-प्रिय सत-दिन आपका ही समर्पण किया करता है। एक पल्ले भी आपको नहीं भूलता। जिस दिन आपको यज्ञोपवीत दिया गया था, तब उसने मुझसे कहा था कि माँ आज यज्ञोपवीत के गीत गाओ। जब आप घर का चयन करके वन-विचरण के लिए निकले, तब भी उसने मुझसे कहा था कि आज अक्षराधाम के स्वामी गृहत्याग करके वन में जाने के लिए निकले हैं। इस तरह बचपन से ही मेरा मूलजी आपको याद किया करता है।’ माँ ने कहा।

यह सुनकर श्रीहरि कहने लगे, ‘ये मूलजी तो हमारे निवास का अक्षराधाम है, वे अनादि अक्षरब्रह्म हैं। साकरबा! यह तो गर्भ में थे तब, उससे पहले और आज भी हमारी मूर्ति अखंड देखते थे और देखते हैं। हमारा और उनका सेवन अनादिकाल से है। हम भी जम्म से ही मूलजी को निरंतर याद करते हैं, उनका नाम हमारे साथ शाक्तरूप में हैं और हमारा नाता उनके साथ निरंतर है।

दस अवतार, चार व्युह, चौबीस मूर्ति और ब्रह्मा, विष्णु एवं मंडे एक-एक ब्रह्माण्ड में निवास करते हैं। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डों को मूलजी ने अपने एक-एक रोम में धारण किया है। वे तो मूल माया, मूल पुरुष आदि से परे हैं। वे तुम्हारे घर पुरुषरूप में प्रकट हुए हैं।

मूलजी तो अनादि अक्षरब्रह्म हैं। अध्य-उद्ध्व, और प्रमाणरहित हैं, संचिदानन्दरूप हैं। मूलजी के सम्बन्ध से जो जीव शुद्ध ब्रह्मरूप हों जाता है, वह आत्मनिक मुक्ति को पाता है।

इस प्रकरण में आषाढ़ संवत् 1864 के प्रसंग दिये गये हैं।
अद्वैत को दीक्षा

धामरूप मूलजी निर्गुण और गुणातीत हैं, ज्योतिरूप हैं, हमारी मूर्ति और अनन्त मुक्तों को धारण किये हुए हैं, फिर भी हमारे निकट अखंड हमारी सेवा में मूर्तिमान स्वरूप में सदा रहते हैं। मूलजी कर्ता होते हुए भी अकर्ता, यानि सबसे अलिप्त हैं। आप सब अक्षर की यथार्थ महिमा को समझोगे और प्रकट अक्षरवहें के साथ एकरूप बनोगे तब हमारी महिमा समझ पाएगे। जो अक्षररूप होगा उसीको अक्षर से पहे पुरुषोत्तम की यथार्थ महिमा समझ में आ जाएगी।

ऐसी महिमा सुनकर साकरसा ने कहा, ‘महाराज! मेरी तो स्त्री की देह है, इसलिए में अधिक कुछ नहीं समझ पाती, किन्तु आप जैसा कहते हैं वैसा ही है।’

तभी मूलजी भक्त आ गये। महाराज भोजन के लिए विराजमान हुए। उन्होंने मूलजी के हाथों में प्रसाद देकर उन्हें धन्य किया।

भदर भी श्रीहरि ने एक मास तक निवास किया। हरिभक्तों को समझाया कि अपने धामस्वरूप अक्षरवहें ये मूलजी शर्मा हैं। तत्परतावाद कार्तिक शुक्ला तुलिया के दिन वे विचरण करते हुए कच्च प्रभाग में पढ़े।

अद्वैत को दीक्षा

श्रीहरि को सुनदरजी सुधार के अहंभाव युक्त शब्द याद थे। महाराज ने उनका गर्व भजन करने के लिए एक अनन्त घटना का सृजन किया।

भदर से निकलते से पूर्व उन्होंने सुराखाँचर, अलेया खाचर, अमरो पटगर... आदि अद्वैत के सभी संभावित और दरबारों के नाम पर एक सुंदर आदेश पत्र लिखा कि ‘आप लोग इस पत्र को पढ़कर, तत्काल घर का त्याग करें, जेललपुर जाइए। वहाँ रामदास स्वामी से दीक्षा पाकर, काशी काशी की ओर प्रस्थान करें। वहाँ ठहरकर कुछ महिनों के बाद हमें भुज आकर मिलना।’ पत्रवाहक सभी के घर श्रीहरि का आदेश लेकर निकल पड़ा। सभी भक्त महाराज का आदेश सुनते ही घरबार छोड़कर निकल पड़े। जब वे रामदास स्वामी के पास आये। उसी दिन श्रीहरि ने रामदास स्वामी को स्वपन में दर्शन दिया कि इन नये परमहंसों का बृंद लेकर आप सीधे भुज पथरे।

श्रीहरि भुज पथरे कि कुछ ही दिनों में वे परमहंसों का बृंद रामदास
स्वामी के साथ भुज आ पहुँचा। श्रीहरि स्वयं दंडवते करते हुए उनका सत्कार करने के लिए पधारे। फिर सुन्दरजी सूतर से सभी का परिचय देते हुए कहने लगे, ‘इनमें से प्रत्येक पाँच, पच्छिस या पचास गाँव के स्वामी हैं। केवल हमारा एक पत्र पढ़ते ही झोलिया पश्ची ५ की तरह सबकुछ छोड़कर साधु बनकर आये हैं।

उन परम्पराओं को देखकर सुन्दरजी सूतर के नेत्रों में पानी आ गया। उनका अर्हतार गल गया। उन्होंने बंधिया में श्रीहरि से कहे शब्दों के लिए क्षमापन की। किन्तु महाराज ने अपना इरादा बदल दिया और सभी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा दी। किन्तु कड़ गाँव के कल्याणभारी बापस नहीं लौटे। वे तो अपना नाम पत्र में न लिखने पर भी, ‘आदि’ शब्द में अपना समावेश मानकर साधु बन गये थे, ऐसे ‘अद्भुतानंद स्वामी’ ने साधु रहना ही पसंद किया। महाराज ने भुज-कच्च में विचरण किया। माण्डलों में महाराज ने खेय्या खेत्री के प्रश्नों के उत्तर देकर, खेय्या खेत्री को जीतकर अपना आश्रित बनाया।

हिंसामय यज्ञ का खंडन

भुज में जगजीवन मेलता नाम का ब्राह्मण, राजा देवाजी राव के आठ दीवानों में से एक था। वह माताजी का भक्त था। उसने हिंसामय शतबंधी यज्ञ का आयोजन किया। उसमें पांडीत तात्रिकों के द्वारा ‘देवी को प्रसन करने’ के उद्देश्य से वह भेड़-बकरों का ब्रह्म करना चाहता था। मंत्रोचार एवं आहुति दे रहे तात्रिकों के सिर पर रक्त की तरह कुंकुम फैला है। बकरों को उन्हें गले में हार पहनकर बलदान के लिए तैयार किये गये थे।

जब श्रीहरि को इन लोगों को हिंसक परंपरा की खबर मिली। वे निरोध प्राणों पर होनेवाले अत्याचार की कल्पना से कापने लगे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि ऐसे हिंसक यज्ञों के कारण वैदिक यज्ञ और वैदिक सिद्धांतों का हास ही रहा है। वे दोनों के सत्याचार रहस्यार्थ समझाने के

5. ऐसे कहते हैं, जो आकार में उड़ते समय जमीन पर खड़े अपने मालिक का इशारा पाकर पूर्ण विश्वास से अपने पैठर गिलिया बंद कर गिर पड़ते हैं और मालिक उनकी झोली में ले लेता है, जमीन पर गिरने नहीं देता।
ब्रह्मचारी को साथ बैठाया

लिए तथा जगत में अहिंसामय यज्ञों की परंपरा का पुनः स्थापन करने के लिए श्रीहरि जगजीवन द्वारा हो रही यज्ञ-मण्डप में पधारे। श्रीहरि ने साधु और ब्रह्मणों के लक्षणों की एवं धर्म की बातें की। तत्पश्चात् वेद-मंत्रों के आधार पर उन्होंने अहिंसामय यज्ञों का अत्यंत तर्क एवं शास्त्रसंगत तरीके से प्रतिपादन किया।

उन्होंने कहा, ‘अजेन यज्ञत्’ का अर्थ आप ऐसा करते हैं कि ‘बकरों की बलि देकर यज्ञ करना’ परंतु इसका अर्थ ऐसा नहीं है। ‘अज’ का अर्थ है कुछ साल पुराना एवं कभी उग नहीं पाए ऐसे धान की आह्वान देना। ऐसे धान से यज्ञ में आह्वान देनी चाहिए। तथा सुपात्र ब्राह्मण के द्वारा सातविक हुत द्रव्यों से यज्ञ करना चाहिए। यही वेदों का सनातन सिद्धान्त है। यज्ञ में प्राणी की हिंसा करने से कोई देवी-देवता प्रसन्न नहीं होते। शास्त्रों के आधार पर श्रीहरि ने ऐसा बहुत उपदेश दिया। जगजीवन ने बहुत से तर्क किये। किन्तु उसका तर्क महाराज की शास्त्रेकृत बात के आगे नहीं टिक सका। शास्त्रार्थ में महाराज की विजय हुई। अहिंसामय यज्ञ सच माने गये।

किन्तु आपुरी बुझिवाला जगजीवन माना नहीं। इस कारण महाराज वहाँ से चले गये।

ब्रह्मचारी को साथ बैठाया

महाराज कच्च में विचरण कर रहे थे। बाहिया गाँव की ओर जाते हुए मार्ग में कुछ चोरों से भेंट हो गई। महाराज ने ब्रह्मचारी से कहा, ‘हमारे साथ जो भोजन है, सभी इनको दे दो’ चोरों ने पैसे के लिए दोनों की तलाशी ली परंतु उनको कुछ भी नहीं मिला, इसलिए वे भोजन लेकर चलते बने। कुछ देर के बाद महाराज ने कहा, ‘ब्रह्मचारीजी, मुझे भूख लगी है। अब खाली पेट तो नहीं चल पाऊँगा। कुछ सुखड़ी वाग्छर है या नहीं?’

ब्रह्मचारी ने कहा, ‘आपही ने तो सब कुछ चोरों को दिलवा दिया अब मेरे पास कुछ नहीं है।’

महाराज ने कहा, ‘तब तो भूखे पेट कैसे चला जाएगा?’ महाराज मार्ग पर ही खड़े रह गये।

उसी समय एक कुनबी पेटल खाली बैलगाड़ी लेकर आ पहुँचा।
ब्रह्मचारी ने उसे समझाकर कहा, ‘हमारे गुरु को बिठाओगे?’ उसने तुरंत सेवा के लिए हामी भर दी। श्रीहरि ने ब्रह्मचारी से भी अपने साथ गाड़ी में बैठने के लिए निर्देशित किया। किन्तु सेवकों के पालन करने वाले ब्रह्मचारी गाड़ी में नहीं बैठे। उन्होंने पीछे-पीछे चलना ही पसंद किया। परंतु गाड़ी जल्दी से चलने के कारण ब्रह्मचारी बहुत पीछे रह जाते थे। कुछ देर के लिए महाराज ने अचानक गाड़ी में इतना बजन बढ़ा दिया कि बैल एक इंच भी आगे नहीं चल पाए। पेटल ने बैल हाँकने के लिए भारी पुरुषार्थ किया पर गाड़ी का बैल आगे नहीं बढ पाए।

महाराज ने मज़ाक करते हुए कहा, ‘पेटल, यह जो पीछे दाढ़ीवाला साधु (ब्रह्मचारी) चला आ रहा है, वह बहुत जादू-टोने बाता है। उसीने हमारी गाड़ी खड़ी कर दी है। इसलिए तुम उसे गाड़ी में बिठाओगे तभी तुम्हारी गाड़ी चल पाएगी। यदि वह मना कर दे तो उसे बलपूर्वक कलाई थाम कर गाड़ी पर बिठा देना।’

पेटल ने ऐसा भी किया, तुरंत गाड़ी चल पड़ी। बांधिया गाँव में धर्मशाला के सामने महाराज गाड़ी से उतर गये। पेटल के घर पधारे और सुखदी का भोजन सवाकिया किया। भक्तों को कपड़ों से उबारने के लिए वे अपने एष्ट्र्य का उपयोग इस प्रकार किया करते थे। जिसमें मज़ाक तो रहता ही था, प्रायः उनकी करुणा झलकती रहती थी।

स्वयं पालन करके फिर पालन करवाया

श्रीहरि अपने परमहंसों को जो भी आज़ा देते, उसके अनुसार पहले स्वयं ही आचरण करते। शिक्षा देने के लिए उनका यह तरीका था कि स्वयं बरतते, फिर दूसरों को बरतने का आदेश देते और अपने व्यवहार द्वारा सबको शिक्षा देते थे।

‘तेरा’ गाँव में महाराज ने परमहंसों को आज़ा दी, ‘आज जैसे सब परमहंस भिक्षा में पकाया हुआ अन्न ही लें। रोटी, खिचड़ी इत्यादि जो भी मिला हो, एकत्र करके, एक कपड़े में मिलाकर, कपड़े सहित पानी में डालकर, उसे हिलाकर निचोड़कर ऐसे अन्न के गोले बनाना। जब वहाँ कुत्तों को पूर्ण लायक न रहे ऐसा स्वादिष्ठ हीन एक-एक गोला आप सब
साधुओं की कठिन परीक्षा

परमहंस खा लेना

यह सुनकर कुछ परमहंसों के मन में विचार आने लगा कि हर किसी के हाथ का पकाया हुआ अन खाने से हम धर्मचुत तो नहीं हो जाएँगे? गोकिन्द स्वामी तो इस तरह पकाए हुए अन की भिक्षा माँगने के लिए तैयार ही नहीं थे। वे तो इस आदेश का मन ही मन विरोध कर रहे थे। जब कि महाराज सोच रहे थे कि परमहंस–दीप्का लेने के परवाह वर्ण या आश्रम का मान नहीं रहना चाहिए।

आखिर श्रीहरि स्वयं कुछ परमहंसों के साथ भिक्षा माँगने के लिए पदराए। दोपहर के तुर्क जो भी पका हुआ अन भिक्षा, श्रीहरि उसे एक झोली में लेकर परमहंसों के साथ कुएँ पर पढ़ाए। उस झोली को तीन बार अच्छी तरह पानी में झमकारे दी। तत्परतात्त्व अलंकार बेसवाद भोजन का एक गोला सबसे पहले स्वयं खाया और सभी को खाने के लिए दिया। गोकिन्द स्वामी यह देखकर अवाक्कूर गये। अपने इष्टदेश को पहल देखकर सबका अहंकार पिघल गया। सभी महाराज की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया। इस तरह परमहंसों की तपस्या के लिए उन्होंने एक नया प्रकरण प्रारंभ किया।

साधुओं की कठिन परीक्षा

श्रीहरि ने कुछ संतों को मुक्तानन्द स्वामी के साथ गुजरात की और सत्संग प्रवर्तन के लिए भेजा। वे अहमदाबाद आ पहुँचे। वहाँ दरियाखान के गुंबद के नीचे उनका निवास था। शहर में भिक्षा के लिए जाते, तब उन्हें द्वेषियों के द्वेष का सामना करना पड़ता। बे उनकी झोली में मरे हुए चूहे, छिपकली, प्याज, लहसून और घर का कूड़ा भी डाल देते। संतों को मिली हुई भिक्षा फेंक देनी पड़ती और उपवास करने पड़ते। कई बार एक पाँव या उससे भी कम भिक्षा प्राप्त के भाग में आती। भिक्षान को साफ करके सभी संत पानी हुजोकर, गोला बनाकर साधु खा लेते। एक बार साधुओं की भिक्षा में कुछ सड़ा हुआ बासी भोजन मिला। संतों के शरीर पर इसका विपरीत असर हुआ। उनके पैरों में चीरे पड़ गये और तलवे में छाले उभर आये।....।

ठीक उसी समय भुज में महाराज के पैरों में भी छाले उभर आये?
शिष्यों के साथ श्रीहरि का कैसा एकात्मभाव?

करीब ठहर यह संगठन की एक मंडली जामनगर गई थी। सभी संगठन शहर के बाहर तालाब के फिरोज़ ठहर थे। उन्हें भिक्षा में ज्ञान, बाजारी, मकाई का आत्मा, चावल की खाली तथा कोदरी मिला करती थी। प्रत्येक परमहंस उपरोक्त विधिपूर्वक उसे निःस्वाद करके एक-एक गोला खा लेते। कभी-कभी आँखाप ना कभी एक ही ग्रास अन का खाने को मिलता था। संगठन ने अपनी कठिनाई की बात हरिभक्तों के द्वारा महाराज को कहलाई।

कुछ दिनों के बाद महाराज ने उत्तर भेजा, ‘कुछ समय पहले एक सदृशु की झोपड़ी पर गाँव का एक आदमी प्रतिदिन एक सेर चावल दे जाता था। उसका भोजन करके वे दिनभर साधना किया करते थे। इतने में एक मुम्बई उनका शिष्य बनने के लिए आया। गुरु ने कहा, ‘मुझे तो निर्वाण एक सेर चावल मिलते हैं जिसका भात बनाकर खा लेता हूँ। इसमें कठिनाई से मेरा पेट भरता है। तो में तेरे लिए क्या प्रांभ कर सकता हूँ?’

मुम्बई ने कहा, ‘गुरुजी, मेरी चित्ता न करें, आप चावल का मांड निकालते हैं, मैं उसे पीकर रह लूँगा।’ और वह गुरु की सेवा में रह गया।

कुछ समय के बाद दूसरा मुम्बई आ पहुँचा, उसने वहाँ शिष्य बनकर रहने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने स्वयं और शिष्य दोनों के निवास के विषय में बता दिया। परंतु उसने कहा, ‘गुरुजी, चित्ता न करें। आप चावल पकाने से पहले उसने धोते हैं, उस धोवन को पीकर में आपकी सेवा में रह लूँगा।’ वह भी गुरु की सेवा में धोवन पीकर रह गया।

एक दिन तीसरा मुम्बई आया। उसने भी वही रहने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने अपने दोनों शिष्यों के निवास के विषय में सब कुछ बता दिया तब उसने कहा, ‘गुरुदेव! आप भोजन के परचातु हाथ धोते हैं। वह झुठा पानी और नीचे गिरे हुए झुठे अन के दाने खाकर में आपकी सेवा में रहूँगा। आप मेरी चित्ता न करें, मुझे तो सत्संग करना है।’ इस तरह तीनों सदृशु के साथ रहने लगे। इन शिष्यों की तुलना में तुम्हारा दुःख व कुछ भी नहीं है। अत: धर्म होगा, तो आप को दुःख मालूम नहीं होगा और भगवान का भजन हो पाएगा।’
साधुओं की कठिन परीक्षा

ऐसा अदभूत प्रेरणापत्र पढ़कर सभी संत उत्साहित हो गये। वे अपना दुःख भूलकर कठिन साधना के लिए नई शक्ति से कठिनाई हो गए। तेंगन प्रदेश से आने वाले एक साधु तो तालाब में सबसे धोने के लिए आने वाले काशी व्यंग्य के पते छोड़ जाते, उसे खाकर रहते थे। कितने ही साधु हरी काई खाकर रहते, इसी तरह चार-पाँच दिन बीत गये।

पाँचवें दिन अचानक जामनगर के राजा उधर से निकले। बड़े दूर से उन्होंने साधुओं के कृष्ण शरीरों को देखा। उनका हदय दया से पसीजने लगा। उन्होंने कुछ नौकरों द्वारा जाना कि वे स्वामिनारायण के साधु हैं। और भिक्षा के अभाव में उनके शरीर अत्यंत दुर्बल हो गए हैं। राजा ने संतों से कहलवाया, ‘साधुओं से कहो कि हमारे महल में आकर रहें। सब सीधा और सामान हमारे महल से आयेगा। आप वहीं रहकर आनंदपूर्वक भजन-साधना करें।’

मण्डल के मुख्य संत स्वामी स्वरूपानंदजी थे। उन्होंने कहा, ‘जहाँ हमारा सत्कार होगा वहाँ हम नहीं रह सकते। हमें राजसी ठाट शोभा नहीं देता। इसलिए हम महल में तो नहीं ठहरेंगे।’

तब राजा ने कहा, ‘क्या यह राज्य के स्वामी का अपमान है?’

स्वामी ने कहा, ‘हम अपमान करना नहीं चाहते, किन्तु हम अपने इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण का दिया हुआ नियम नहीं तोड़ सकते। यदि कदाचित् आपको अपमान महसूस हो तो हम आपके आदेश से इस स्थल को छोड़कर जा सकते हैं। हम तो किसी और गाँव में जाकर भजन करेंगे।’

यह सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गया। उनके मन में संतों के प्रति आदर बढ़ गया। पश्चात् राजा ने अलग-अलग दुकानों में और घरों में अपनी ओर से सीधा रखवा कर संतों के लिए गाँव में अच्छी भिक्षा का प्रबंध करवा दिया। केवल दो दिन मुंजरे थे कि स्वामीने संतों से कहा, ‘आप जानते हैं कि जहाँ नित्य अच्छी सामग्री मिलते, वहाँ रहने का आदेश नहीं है। अच्छा पदार्थ साधु के लिए बंधनकारी है, आत: चलो।’ तीसरे दिन साधुओं की मण्डली वहाँ से चल निकली।

एक बार महाराज ने आदेश दिया कि ‘आपको प्रतिदिन पाँच मुमुक्षुओं से सत्संग की वातें करके, वर्तमान धारण कराना और उन्हें सत्संग बनाकर ही
भोजन करना। इस आदेश के अनुसार सभी संत एक एक मुमुखु के पीछे सदाचार के नियम देने के लिए पुरुषार्थ करने लगे। वे हल चलाने वाले किसानों के साथ खेत के इस सिरे से उस सिरे तक चलते चले जाते, उन्हें बातें कहते रहते। कभी कभी लुहार, सुनार, राज मिस्त्री, दर्जी अथवा दूर-दराज जंगलों में रहने वाले वनवासियों की झुगियों तक वे विचरण जारी रखते।

इतना कष्ट करने पर भी कई बार पूरे पाँच सत्संगी नहीं हो पाते। साधुओं को उपवास करने पड़ते। महाराज को इस बात का पता चला। उन्होंने करण करके कहा कि शाम तक यदि मुमुखुओं को सत्संगी बनाने के प्रयत्न के बाद भी आप निष्कल रहो तो सूर्यस्त के पश्चात् पाँच व्रूखों को वर्तमान धारण करवा कर जल ले सकते हैं।

गाजर मेरी बेरन

कच्चे के विचरण के बाद श्रीहरि अलेयाखाचर के गाँव झिझावदर आ पहुँचे। यहाँ उन्होंने परमहंसों को नया आदेश दिया, ‘भोजन के पहले सभी को ध्यान करना चाहिए। जब पात्र में सब कुछ परोस दिया जाये, तब तब आँखें बंद करके पात्र में हाथ डालना। जिस सामग्री पर आपका प्रथम हाथ पड़े, उस सामग्री के सिवा और कुछ भी नहीं खाना।’

दोपहर के भोजन का समय हुआ। सभी को सबकुछ परोस दिया गया था आँखें बंद करके बैठे हुए संतों-भक्तों की ओर देखकर महाराज ने ‘जय’ बुलवाई। सूराखाचर का हाथ गाजर के तीखे अचार में पड़ा। अत्याधिक नमक और मिर्च का बना गाजर का टुकड़ा मुंह में रखते ही सूराखाचर को हिचकियाँ आने लगीं। आँखों से पानी बहने लगा। शरीर के रंगभरे खड़े हो गये। सूराखाचर ने पानी तो फिरा पर बिना कुछ खाये भूख नहीं मिटी थी। वे श्रीहरि को सुनाने के लिए उच्च स्वर से गाने लगे, ‘बहाला, गारजडं मारं वैरी रे...’ महाराज सूराखाचर को होशियारी पर हँस पड़े।

उन्होंने कहा, ‘क्यों, कैसा सुख मिला?’

सूराखाचर ने कहा, ‘महाराज! मेरे इस सुख में तो सबको भागीदार होना चाहिए।’ अब उन्होंने दया करके सूराखाचर को खीर खाने की आज्ञा दी।
पटान को निश्चय

जूनागढ़ की सेना में नौकरी करनेवाला एक पटान झिंगावर को सीमा से जा रहा था। अचानक उसके अंतःकरण में शान्ति की अनुभूति होने लगी, मन के अनियंत संकल्प शान्त हो गये, उसे चारों ओर तेजपुंज दिखाई देने लगा। यह ऐसा तीव्र अनुभव था कि वह सोचने लगा कि मुझे ऐसी अनुभूति न तो मक़का-मदीना की हज़ारों में हुआ था, मैं तो मस्जिद में नमाज पढ़ने हुए कभी ऐसा अनुभव हुआ है। वह इस अनुभूति का कारण ढूँढ़ने के लिए गाँव की ओर खड़ा जा रहा था।

उसने एक प्रभावशाली पुरुष को देखा, तो पूछ लिया, ‘भाईजान, इस गाँव में कोई ऑलिया-फकीर रहते हैं क्या?’

वह पुरुष और कोई नहीं, परन्तु गाँव के ठकुर अलेया खाचर थे। श्रीहरि के परम भक्त अलेया ने कहा, ‘चलिए मेरे साथ में आपको उन ऑलिये का दीदार करा दूू।’ वे पटान को लेकर गाँव के चौपाल की ओर चले। दूर से रामजी मन्दिर के बाबा को दिखाया। हुक्का गुड़गड़ते हुए बाबा को देखकर पटान के मन को अंश भर सांत्स्ना नहीं मिली। अलेया खाचर मुख्तरने लगे कि पटान को असलियत पहचानने में कोई तकलीफ नहीं होगी। वे उन्हें लेकर श्रीहरि के पास आ पहुँचे।

जैसे ही श्रीहरि का दर्शन हुआ पटान ने युटने देक दिये। हुक्ककर श्रीहरि के समक्ष कुरान के कलम पढ़ने लगा। आजाना पुकारकर उसी समय नमाज अदा की। श्रीहरि कुष्ता-दृष्टि बरसाते हुए उसकी ओर देख रहे थे। उसे समाधि लग गई, जिसमें उसे अभिस हजार पयागम्बरों के दर्शन हुए। श्रीहरि को खुदाताला मानकर वह लगातार स्पूति करने लगा, ‘या अल्लाह, मुझे आपकी खिसमत में रखने की मेरबानी करें।’ श्रीहरि ने उसे आशीर्वाद देकर कहा, ‘तुम इस घटना को निरस्त स्मरण में रखना। हम तेरा कल्याण अवश्य करेंगे। तेरे अन्त समय पर हम तुझे अपने धाम में ले जाएंगे।’ पटान बार-बार नमस्कार करते हुए वहाँ से बिदा हुआ।

महाराज वहाँ से कारियाण की ओर चल दिए।
[ 8 ]
गूँगे के मुख से वेद-पाठ

सन् 1805 (संवत् 1861) से श्रीहरि जब भी कारियाणी पढ़ाते,
अपने संतों-भक्तों को प्रेरणा देकर उस जनहीन प्रदेश में तालाब, कुण्ड,
तथा बावड़ी आदि खुदवाने का पूर्तकर्म करवाते। पूरे चार साल तक
गाँववासियों के लिए यह काम चलता रहा। सन् 1809 (संवत् 1865) में
काम पूरा होते ही श्रीहरि ने कारियाणी गाँव में भाद्रपद व आश्विन, दो
महीनों तक महाराज तथा विष्णुवाग का भव्य आयोजन किया। चालीस दिन
तक आयोजित हुए यज्ञों की पूण्णिति आश्विन क्रुष्णा त्रयोदशी को की। इस
अवसर पर हजारों ब्राह्मणों को भोजन करवाया, दक्षिणा दी तथा उपस्थित
संतों और हरिवंशों को ज्ञान और प्रेरणा से बुद्धि किया।

अब उन्होंने संस्कृत के प्रचार के लिए गुजरात के खंड़ा जिले को लक्ष्य
बनाया। विचारण करते हुए वे वर्तमान होकर उसखंड पधारे। वहाँ जानाधार
महादेव के स्थान पर उनका निवास था। गाँव के सारे ब्राह्मण उत्सुकताश
श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे। उनको खबर मिली थी कि स्वामी
सहजानंदजी को लोग भव्यांभ करते हैं। इस विषय पर उन्होंने श्रीहरि की
परीक्षा करने का निश्चय किया। वे चरण छूकर कहने लगे, ‘महाराज, हम
to महादेव शिवजी के उपासक हैं और शंकराचार्यजी के शिष्य हैं, आदि
शंकराचार्यजी ने अपने समय में एक भेंसे के मुख से वेदपाठ करवाया था। यदि
आप ऐसा कर दिखाएं तो हम मानेंगे कि आप स्वयं भगवान हैं।’

श्रीहरि सिर्फ़ करते हुए कहने लगे, ‘विवर्ण, आपको जात होगा कि पशु
के मुख से मनुष्य की बाणी नहीं निकल सकती। किन्तु कोई जड़, मूर्ख तथा
गूँगे ब्राह्मण को आप ले आई। आप उसके मुख से वेदों को ऋचाएँ सुन
paएँ।’ ब्राह्मणों ने तुरंत एक आजम गूँगा, अनपठ और जड़ ब्राह्मणमूर्त
harisankar को ठूँठ निकाला। जब उसे लेकर महाराज के पास आए और
महाराज ने उस पर दृष्टि डालता कि वह स्पष्ट उच्चार के साथ मुदर और
sमवेट स्वर में वेदों के मंत्रों का उद्धोष करने लगा। सभी उपस्थित ब्राह्मण
आश्चर्यमुग्ध हो गए। उन्होंने श्रीहरि का आश्चर्य ग्रहण किया।

इस प्रक्रिया में आपातक संवत् 1865 के प्रसंग दिये गये हैं।
संस्कृत पढ़ने की आज्ञा

इतने सारे ब्राह्मण समाज को एक साथ वर्तमान धारण करवाने की भी एक समस्या पैदा हो गई। प्रतिदिन ब्राह्मणों की भीड़ बढ़ती जाती थी। अब श्रीहरि ने एक नया उपाय सोचा। वे सेवकों के पास बड़ा जलपात्र तैयार रखते और सारे गाँव के घर-घर जाकर आंगन में पानी छिड़कते और कहते, ‘जिसके घर इस पानी के छींट पड़ गए, उस घर के सभी व्यक्तियों को वर्तमान मिल गया है’। इस प्रकार उमरें में सत्संगावृद्धि करके श्रीहरि वर्ताल धारे।

श्रीहरि के परम्परागत वृंद में अनेक कवि थे, जो मर्मस्पष्ट काव्यशास्त्रों की रचना करते थे। कई शिल्प स्थापत्य में निम्नुण थे तो कई लोक व्यवहार में आदर्श की स्थापना करने का। परंतु संस्कृत के विद्वानों की कमी स्पष्टरूप से दिखाई देती थी।

वरिष्ठ संत स्वामी आतमानंदजी महाराज की आज्ञा से विचरण कर रहे थे। वे कम शिक्षित होने पर भी आचरण और साधुता में उन्होंने महापुरुष थे। भगवान की आज्ञा के पालन में हमेशा त्यस्त होने के कारण लोग उन्हें ‘वचन की मूर्ति’ कहते थे।

विचरण करते हुए वे जामनगर पहुँचे। वहाँ नगरजों को उपदेश देना प्रारंभ किया। उस समय जामनगर को ‘छोटी काशी’ कहा जाता था। वहाँ संस्कृत के अनेक विद्वान ब्राह्मण स्वामी आतमानंदजी का नाम सुनकर उनके साथ शास्त्र-चर्चा करने के लिए आ पहुँचे।

उन्होंने स्वामी से पूछा, ‘आपका स्वरूप क्या है?’

आतमानंद स्वामी ने तुरंत उत्तर दिया, ‘गुरू का वचन।’

पणिडत लोग समझ नहीं कि यह संत हमारे प्रश्न को ठीक तरह समझ नहीं पाए। उन्होंने टोकरे हुए अपना प्रश्न दोहराया और ‘हम पूछते हैं कि आपका स्वरूप क्या है?’ आतमानंद स्वामी ने वही उत्तर दिया, ‘समस्त शास्त्रों का सारस्वत गुरू का वचन ही मेरा स्वरूप है।’

विद्वानों ने यह सुनकर उनका उपहास उड़ाया और अपमान करते हुए आपस में कहने लगे, ‘यह प्रजा को क्या उपदेश देगा? यह तो मूर्ख और जड़ लगता है।’
जब जेतलपुर में बुधशंक के लिए पथारे श्रीहरि को इस घटना का पता चला तो उन्होंने निर्णय ले लिया कि छोटे-बड़े अपने सभी संतों को प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के विद्वान बनाकर विद्वत्व वर्ग को सत्संग की महिमा से अवगत कराना अनिवार्य है। उन्होंने 51 वर्षांश मुक्तान्द स्वामी को भी संस्कृत-अध्ययन की आज्ञा दी। स्वामी नित्यानन्दजी, स्वामी गोपालानन्दजी स्वामी शुकानन्दजी, स्वामी शतानन्दजी, स्वामी भगवदानन्दजी, स्वामी वासुदेवानन्दजी, स्वामी निपाकानन्द ब्रह्मचारी आदि संतों तथा सदस्यों को संस्कृत में प्रबोधन वर्षा करने की कर्तव्य की। विशेष अध्ययन के लिए, उन्होंने कुछ साधुओं को सूत्र भेजा। संस्कृत में विद्वान होकर लौटनेवाले संतों का सम्मान करना श्रीहरि कभी नहीं चुकते। उनको प्रोत्साहित करते, उनके अध्ययन की छात्रबीन करते और आवश्यक वस्तु प्रसाद के रूप में देकर उनकी विद्वता की प्रशंसा करते।

उनके ऐसे प्रोत्साहन के फलस्वरूप गीता, उपनिषदों, वेदांतसूत्रों, श्रीमद्भागवत, शांकित्व सूत्र आदि ग्रंथों पर परमहंसों द्वारा मौलिक भाषा की रचना हुई। सत्संगीजीन, हरिवाक्यशुभासिस्थु, सत्संगिभूषण, हरिलीलालक्लस्त; श्रीहरिदिगविजय: जैसे महान संस्कृत ग्रंथों की रचना हुई।

भारतीय भक्ति सम्प्रदायों में संगीत का स्थान अन्यथा है। श्रीहरि ने अपने संगीतज्ञों को कमी दूर करने के लिए परमहंसों को शास्त्रीय संगीत में विशारद करने का निर्णय किया। कई परमहंस अपने गायक एवं अपने कवि थे। परंतु शास्त्रीय संगीत में पारंगत होने के लिए उन्होंने प्रेमानन्द स्वामी, मुक्तान्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी, भूमानन्द स्वामी, देवानन्द स्वामी आदि को न केवल संगीत सीखने की आज्ञा की, अपितु संगीत को शास्त्रीय परिपरा में पारंगत होने के लिए भी आदेश दिया। गायन उपरात सितार, सरोत, सांगी, तबला आदि वाद्ययंत्रों में परमहंस प्रवीण होने लगे। आज सम्प्रदाय में विविध रागागिनियों में तैयार किये गये हजारों पद विद्यमान हैं। तथा उनके द्वारा सुर, राग, ताल और तय के सम्बन्ध में सुसज्जित ऐसे हजारों भक्तिगीत आज भी उपलब्ध हैं। महाराज के संगीतज्ञ परमहंस अपने समय के उत्तम गायक एवं सम्मान्य कवि माने जाते थे।
उन दिनों यज्ञों में हिंसा की परंपरा अपने चरम पर थी। श्रीहरि ने अहिंसक यज्ञ के द्वारा गुरुगर में एक महान क्रांति का अभियान चलाया था। जेतलपुर में अंतर्रह दिन तक महास्त्र का प्रारंभ वे मकरसंक्रांति के आठ दिन पहले प्रारंभ कर रहे थे। इस यज्ञोऽर्जन में उनकी महेंद्रा की क्रांतिकारी (ब्रह्मभोज) करके करीब एक लाख ब्राह्मणों को निर्माण करना। इस ब्रह्मभोज में पाँच सौ मन थी। सौ बैलगाड़ियों भरकर गुड़ तथा बड़े संकड़ों मन आते का उपयोग किया जानेवाला था। श्रीहरि ने प्रत्येक घर में गेहूं पीसने के लिए सामूहिक सेवा यज्ञ का आयोजन किया। घर-घर से महिलाएं गेहूं पिसकर आते का ढेर लगाने लगी।

इस अवसर पर शास्त्रीय द्वारा उन्होंने हिंसामुक्त यज्ञ का प्रतिपादन किया तथा वेदमंडों के विपरीत अर्थों को दूर करके उनके सत्यार्थ को प्रकाशित किया। पवित्र एवं विद्वान ब्राह्मणों के द्वारा अंतर्रह दिनों का महास्त्र सफलतापूर्वक संपन्न हुआ, यह देखकर द्वेषी ब्राह्मणों के दिल दहलने लगे। उन्होंने यज्ञ में बिन्य डालने का उपक्रम तीव्रतापूर्वक जारी किया। घी के कई कुंड़े तालाब में प्रवाहित कर दिये, लड़्कू का प्रसाद तालाब में फेंक दिया। परंतु यह कार्य स्वयं भगवान का था, इसलिए किसी द्वेषी की एक ने चली। उत्तम पूर्ण सफलता से संपन्न हुआ। श्रीहरि ने उत्पन्नक ब्राह्मणों को स्वयं दक्षिणा दी।

द्वेषी ब्राह्मण एवं विरूढ़ मतपंथी लोग निराश हुए। महाराज यज्ञ की पूर्णावृत्ति के बाद अहमदाबाद पद्धरे।

यहाँ का मराठा सूबेदार सेलुकर कच्चे कान का था। द्वेषी ब्राह्मणों, तथा विरोधी मतपंथियों ने उसके पिता को मृत्यु को माध्यम बनाकर सूबेदार को बहुत बहकाया, ‘देखिए जी, सहजानदजी तो शूद्र जाति के हैं, उनको यज्ञ का अधिकार कैसा? जिस यज्ञ में पशु-बलि नहीं दी जाती, उस यज्ञ की अथिष्ठात्री देवी हमेशा कोपायमान होती हैं। सहजानदजी ने ऐसा अविचार यज्ञ जानवृत्त कर किया है, ताकि आपके पिता की असमय

6. ब्राह्मणों की सभी उपजाति के
मृत्यु हो। यदि ऐसा अधर्म चलने देंगे तो आपकी पेशवाई का सर्वनाश हो जाएगा।’ सेलुकर यह सुनते ही आगबबूला हो गया। उसने श्रीहरि की हत्या का षड़यंत्र रचा। भद्र के किले में उसने श्रीहरि को अकेले उपस्थित होने के लिए निर्माण किया। एक विशाल टंकी के ऊपर खापाचियाँ बाँधकर उसने छोटा-सा सिंहासन तैयार करवाया। किन्तु टंकी में कड़कड़ाता गर्म तेल भरकर उस तरह रखा गया कि किसी को भी षड़यंत्र का अंदाजा न लगे।

श्रीहरि भद्र के किले में पधारे तब सिपाहियों ने संतों को महल के बाहर ही ठहरने का आदेश दे दिया। केवल श्रीहरि को ही भीतर जाने की अनुमति दी, लेकिन दण्डी स्वामी देर्वानदजी तो उसकी एक भी
माननेवालों में नहीं थे। वे उसे धक्का लगाकर श्रीहरि के साथ भीतर जा पहुँचे।

अत्यावश्यक श्रीहरि के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं था। सूबेदार ने दिखावटी प्रेमार्द के साथ श्रीहरि को उस नकली सिंहासन पर बिराजमान होने के लिए बिनती की। किन्तु महाराज ने उसे नकारते हुए कहा, 'सूबेदार, हम तो त्यागी हैं, ऐसे राज-सिंहासन पर बैठना हमारे लिए उचित नहीं है। ऐसा आसन तो आपको ही शोभा देगा।' इतना कहकर श्रीहरि ने अपनी छठी को उस सिंहासन के नीचे रखकर जोर से दबा दी। पल-पल में तो सिंहासन टेढ़ा होकर गद्दी-तकिये के साथ उबलते तेल की टंकी में जा गिरा। तेल की गम्भीर बूढ़ी बाहर की ओर छिटकने लगी। सूबेदार के कपट का भरे दरबार में पर्दाफाश हो गया।

स्वामी देवानन्दजी ऐसा भोजा देखकर क्रोध के मारे कापने लगे। वे जैसे ही शाप देने के लिए तैयार हुए कि महाराज ने उन्हें रोककर बड़े शांतभाव से कहा, 'हमें दंड देना का अधिकार नहीं है। भगवान ऐसा अन्याय सहन नहीं करेंगे।'

सूबेदार निष्कल क्रोध से लाल-पीला होने लगा। मिथ्या अभिमान से उसकी वाणी में खोखलापन झलक रहा था फिर भी वह तुनककर बोला, 'अभी, इसी समय आप इड़रिया दरबाजे से शहर से बाहर निकल जायें, इस शहर में दुःखारा कभी मत आना।'

श्रीहरि ने सिमित के साथ पूछ लिया, 'हमें कब तक नहीं आना है।'

'जब तक हमारा-पेशवा का राज्य है।' विवेकभ्रष्ट सूबेदार ने गर्जना की और बहुत कम समय में सन् 1816 (संवत् 1874) में गुजरात में पेशवाई समाप्त हुई। अहमदाबाद पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया।

मानकी का सवार

गाँव-गाँव विचरण करने के लिए श्रीहरि के पास अच्छी घोड़ी होनी चाहिए। ऐसा सोचकर कुछ काढ़ी हरिभक्त ऐसा अनुपम अभ्य खोजने की तैयारी कर रहे थे। कुछ दिनों में महाराज के सुनने में आया था कि मोणापर गाँव में मानकी नाम से एक उत्तम नस्ल की एक बछड़ी है। घोड़ों की जाति
माणकी का सवार

माणकी श्रेष्ठ जाति कहलाती है। महाराज ने सुराखाचर से पूछा, ‘क्या आप मीणापुर के दरबार से परिचित हैं?’

उन्होंने कहा, ‘जी, महाराज! मैं भैंसजाल गाँव के कायाजी के साथ उनके अच्छे समबंध हैं।’

‘तब तो हमें भैंसजाल जाना है।’

श्रीहरि सुराखाचर को साथ लेकर भैंसजाल पड़ारे। उस गाँव के बाहर एक हनुमानजी के मंदिर में उन्होंने निवास किया। एक लड़के के द्वारा कायाजी को कहलावाया कि आप से मिलने के लिए भगवान स्वामिनारायण अपने भक्त ढाकोर सुराखाचर को लेकर आपके गाँव की सीमा पर पहुंचे हैं और आपको बुला रहे हैं। संदेश सुनते ही कायाजी दोनों को निमंत्रित करने के लिए घोड़ी पर सवार होकर गाँव की सीमा पर आ पहुंचे। श्रीहरि के दर्शन से ही उनके हाथों में रहा हुक्का छूट गया। श्रीहरि का चरणस्पर्श करके उन्होंने कहा: ‘प्रभु! दरबार भुजन में पठाएगा।’ श्रीहरि ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया और सुराखाचर ने अपने आगमन का हेतु भी दिखा दिया, ‘कायाजी, आपकी रियासत के गाँव मीणापुर में आपके सजन मनुभा के पास माणकी की बछड़ी है, वह हम श्रीहरि के लिए लेना चाहते हैं। पर मनुभा वैसे ही हमारी बात नहीं मानते। अतः आपको उहें कहना पड़ेगा।’ कायाजी इस बात पर तुरंत सहयोगी हुए। उन्होंने मीणापुर गाँव में संदेश भजवाया।

परंतु स्वामिनारायण भगवान कायाजी के साथ माणकी को लेने के लिए आ रहे हैं, ऐसी खबर मिलते ही वे दरबारों के साथ गाँव छोड़कर कहीं निकल चुके।

जब श्रीहरि मीणापुर पड़ारे तब कोई पुरुष घर पर नहीं मिला। पूछताछ करने पर महिलाओं ने कहा कि ‘सभी पुरुष दूसरे गाँव गये हैं, किन्तु आपको उनका काम क्या था?’

कायाजी ने श्रीहरि का परिचय देकर कहा, ‘ये हमारे भगवान है। इनके लिए हम माणकी घोड़ी लेने के लिए आए हैं।’

‘अंतः, इतनी सी बात में आदमी लोगों का क्या काम है? वह तो में ही दे दूँगी।’ मनुभा की पत्नी ने कहा, फिर अपनी दस वर्षीय बेटी से कहा: ‘बेटी, जाकर माणकी की बछड़ी ले आ।’ वह बछड़ी को ले आई और
माणकी की डोर महाराज के घर में थमा दी।
‘एक धारी लाईा।’ जब धारी आ गई, महाराज ने उसमें 60 रुपये रखवाए। और उस छोटी-सी बालिका से पूछने लगे, ‘बेटी! तुहारा नाम क्या है?’ ‘मोंढीबा!’ उसने कहा। महाराज ने कहा, ‘तुम्हें बहुत मोंढा (महंगा) सुख मिलेगा। तुम तो महारानी बनोगी।’ महाराज उसे आशीर्वाद देकर माणकी बड़े बड़े 8 के साथ भेंसजाल लौट आये। वहाँ से जाकर होते हुए करमड़ एवं जेतलपुर पथरे।
7. श्रीहरि के आशीर्वाद से मोंढीबा का विवाह गोंडल नेर जिले मध्यप्रदेश जी के साथ हुआ, जो महारानी बनी। गोंडल में उन्होंने गुंडालांनाद स्वामी के अर्नवन्दन के त्योहार पर अध्यात्म देखने का निर्देशक करवाया जो आज भी उनकी सेवा की गाथा कह रही है।
कायाजी दरबार की पचमी पीढ़ी में हुए हस्ताक्षर बापु वह इतिहास प्राप्त हुआ है। इसलिए कुछ उपयोगकर्ता अन्य किंवदंती से परे एक ऐतिहासिक सत्ता है।
8. माणकी घोड़ी के विवाह में दूरस्थ उल्लेख यह है कि एक घाँव में भौम पंडवा रहते थे। श्रीहरि ने अपने बधों में सौंपत चूह दिखाकर उनके साथ साथ माणकी को दो हजार रुपए सूद पर उधार दिए थे। वे चाहते थे कि वे भौम नहीं दें पाएं। समय बीत रहा था। सूद के साथ तीन हजार रुपए लेने थे। भौम पंडवा ने एक बार मन ही मन सोचा कि मुझे मेरे रूपये वैसे तो नहीं मिलेंगे परन्तु यदि मिल जाएं तो मैं श्रीहरि के चरण में अर्पण कर दूंगा। ऐसा संकल्प लेकर वे मीणापर जा पहुँचे। परंतु मनुष्य ने कहा, ‘मैं इस समय रुपए नहीं दे सकता।’
अब भौम पंडवा ने कहा, ‘ऐसे बाड़े अब नहीं चलने वाले। मेरा धर्म खराब हो चुका है। आज में तुम्हारे पैसे के नहीं लीटेया। यदि रुपए न हों, तो सामने बंधे हुई मेरी पत्नी है। मेरे पैसे में अन्तरा होते हुए भी यादों दे दी, और लिखा दिया कि मुझे मेरे पैसे में मिल चुके हैं। भौम पंडवा पैदल ही घोड़ी की रिवाज तो आ चल दिये, जहाँ महाराज जिजिमान थे।
श्रीहरि ने पंडवाजी के साथ माणकी को देखा तो कहने लगे, ‘सुराखाचर देखो, हमारा गर्दू आ रहा है।’
गर्दू के अवतार समान माणकी घोड़ी को देखकर वे भी बहुत प्रसन्न हुए?
Pंडवाजी ने कहा, ‘प्रभु, यह घोड़ी में आपके चरण में कृपणार्गण कर रहा है। जो आपकी दया के सिला मिलनेवाली नहीं थी। आप इसे स्वीकार करें।’
श्रीहरि ने फिर एकबार सुराखाचर की ओर देखकर हुए कहा, ‘यह हमारा गर्दू, यह हमारी माणकी। महाराज ने घोड़ी की रास हाथ ली और तब से उनके शोभावेगी विचित्रण का आरंभ हुआ।
लोलंगर का उपद्रव

श्रीहरि पाँच-सो काठी हरिभक्तों और तीन सौ संतों का संबंध लेकर सौराष्ट्र से गुजरात की ओर निकले। मार्ग में खोखरा महेंद्राबाद में लोलंगर बाबा का स्थान था। वह वैरागी कमर पर लोहे की जंगी बाँधकर घूमता रहता था। इसलिए लोग उसे ‘लोलंगर’ के नाम से बुलाते थे। उसके चेलों ने संतों को देखा कि ये सब निस्त्र थे, तो उसके एक हजार चेले श्रीहरि के संतों पर बार करने के लिए टूट पड़े।

निर्माय होकर संतों की रक्षा के लिए श्रीहरि ने शूरुवार काठी हरिभक्तों को भेजा। पार्षद भुगुजी ने एक ही बार में उन बाबाओं के मुखिया को मार दिया। जैसे ही काठियों ने मामला सम्भाला सभी वैरागी भाग खड़े
हुए। काठियों की शस्त्रविद्या के सामने कोई नहीं टिक पाए। चार मुखिये मार दिए गये, बाकी सब जन बचाकर भाग निकले। श्रीहरि ने चायल संतों के इलाज के लिए उन्हें सूरत भेज दिया तथा स्वयं कुछ संतों-हरिभक्तों के साथ गाँव बहेलाल पधारे।

जगजीवन का अवत्त

जैसे गुजरात में अहिंसक यत्रों का प्रस्थापन करके श्रीहरि ने हिंसा पर रोक लगाई। वैसा ही प्रचार कुछ की भूमि पर करने के लिए वे सन् 1804 से सन् 1812 तक (संवत् 1860 से संवत् 1868 तक) अनेकवार कुछ पधारे थे।

कुछ में बाढ़, आभौतिक संकट, माननीय अंतर आदि गाँवों को पावन करके भूज के दीवान सुन्दरजी सुतार के घर पधारे। विचरण में घाव होने के कारण श्रीहरि के दामों चरण का आँगूठा पक चुका था। पूरी पैर पर सूरज दिख रही थी। अत्यधिक पीड़ा के कारण वे पहली मंजिल से नीचे नहीं आते थे। परंतु श्रीहरि के आगमन की खबर भूज के दूसरे दीवान और श्रीहरि के द्विवजीवन मेहता को हो गई थी। उसे मालूम हुआ कि सुन्दरजी भी बीमार है तो वह कुशल पूछने के लिए उनके घर आ पहुंचा।

जब से श्रीहरि ने उसके हिंसक यज्ञ को रोककर द्विवजीवन को शास्त्राध्य में पराजित किया था, तब से जगजीवन श्रीहरि के प्रति द्वार के अण्ड में जल रहा था। अवसर पाकर वह महाराज की निन्दा करने से नहीं चुकता था। श्रीहरि के अपमान के लिए उसने अपने बैल का नाम शहजानन्द रखा था। परंतु उसकी पत्नी प्रभावती श्रीहरि की परम शिष्या थी। जगजीवन उस कारण भी प्रति शोध की ज्वाला में जलता रहता था।

उसने आकर सुन्दरजी के हालचाल पूछे, फिर तुरंत पूछा, ‘आजकल सहजानन्द कहाँ है?’ सुन्दरजी संकोच के कारण बोल नहीं सकते थे कि अचानक श्रीहरि सीढ़ियाँ उतारकर जगजीवन के सामने आ पहुँचे। ‘यहीं हूँ मैं।’ जगजीवन इस अप्रत्याशित घटना से अवकाश रह गया। फिर स्वयं को संभालते हुए कहा कि, ‘ओह, तो सहजानन्द, लोग कहते हैं, तुम परमेश्वर हो? क्या यह सच है? क्या तुम ही राधा और लक्ष्मी के पति हो?’
सबका कल्याण करना है

‘जी हाँ, मैं ही सच्चाईगत परिवर्तन पुष्पकोमल हूँ।’ श्रीहरि का स्वर अवस्थ वेधक था। उन्होंने आगे कहा, ‘मैं ही राधा और लक्ष्मी का पति हूँ। शास्त्रों में जहाँ-जहाँ भगवान की महिमा गाई गई है, सर्वत्र मेरी ही महिमा का विस्तार हुआ है।’ महाराज का उत्तर सुनकर जगजीवन तिलिमिताने लगा। क्रोध के मारे उसके मुंह से एक शव्द भी नहीं निकल पाया। वहाँ पर पटकता हुआ घर के बाहर निकल गया।

जब भूस में श्रीहरि कुछ दिनों के लिए गंगासागर मल्ल के घर निवास कर रहे थे, तब मौका देखकर जगजीवन ने श्रीहरि का कल्ल करने के लिए कुछ आरोपों की एक टुकड़ी मल्ल के घर भेज दी। परंतु उसने दीवान तथा मुख्य सेनाध्यक्ष फतेहमहम्मद की संस्मरण नहीं ली थी। उस और आरान सैनिक गंगासागर के घर पर पहुँचे, तब वे अपने साथियों के साथ श्रीहरि की रक्षा के लिए आखिरी जंग खेलने को तैयार बने थे, परंतु महाराज ने उन्हें रोककर कहा, ‘गंगासागर, जगजीवन के उकसाने में मत आना। कुछ अनिष्ठ हो सकता है।’ हमने तुम्हारे भाई जो फतेहमहम्मद के मित्र हैं, उसे फतेहमहम्मद को बुलाने के लिए भेजे हैं। कुछ देर के लिए आपको कुछ भी नहीं करना है।’ जब फतेहमहम्मद को पूरी बात का पता चला, वह क्रोधित होकर बोल उठा, ‘मैं स्वामिनारायण को पहचानता हूँ। उनकी आँखों में मैंने खुदाई नूर देखा है। जगजीवन किसके हृदय से यह सब कर रहा है? उसकी यह मजबूत कि मुझसे बिना पूछ सैनिकों को एक गृहस्थ के घर भेज रहा है?’ उसने अपने आदमियों को भेजकर सैनिकों को वापस बुला लिया।

समय की तरह बदलने लगी। जगजीवन अपने ही कर्तृत्वों के कारण राजनीतिक कद्द का बुरी तरह शिकार हुआ। एक दिन भरी बाजार में उसकी निर्माण हत्या हो गई। उसके दुःखों ने उसे करण अंजाम तक पहुँचा दिया। भगवान के द्रोह का फल हमेशा भुगतना पड़ता है।

[9] सबका कल्याण करना है

संध्या के समय पाँच-सात संत तथा हरिभक्तों के साथ श्रीहरि घेला नदी में स्नान करने जा रहे थे। मार्ग में एक कुनबी किसान अपनी धुन में इस प्रकरण में आपाती संवत् 1866 के प्रसंग दिए गए हैं।
सहजांद चरित्र

खेत की ओर बड़ी शीशी से जा रहा था। अचानक उसका कंधा महाराज के कंधे से टकरा गया। वह तो बिना सोचे या क्षमा-प्राप्ति किये आगे चलता बना, परंतु महाराज के पीछे-पीछे मूलजी ब्रह्मचारी आ रहे थे। उन्होंने उस किसान को रोका और पूछा, ‘अरे! तुम अंधे हो क्या? देखते नहीं? हमारे भगवान से कितना जोर से टकराये!’

‘अरे! महाराज,’ कुनबी किसान ने कहा, ‘मान लो में अंधा ही हूँ, पर क्या तुम्हारे भगवान भी अंधे हैं? उन्होंने मुझे क्यों नहीं देखा? रामावतार में हमें छोड़ दिया, क्रृष्णावतार में हमको निकालकर अलग कर दिया। अरे, उन बन्दरों और गवालों तक का कल्याण किया, परंतु हम लोगों को तो वे एकदम भूल ही गये!’ महाराज यह सवाद सुनकर मुस्कुराने लगे। उन्होंने सोच लिया कि यह बेचारा क्या जानेगा? क्योंकि इस बार तो हमें किसी को नहीं छोड़ना है, सभी का उद्दार करना, हमारा एक ही लक्ष्य है।

महाराज ने कुनबी, काटी, दरी, बड़ई, लोहार, मेमार, मोंगी, बाघरी, हरिजन, भंगी, तेली, कसर, सुनार, मालिक, सिलावट आदि अनेक प्रकार के निम्नमतीय तथा उपेक्षित लोगों का उद्दार किया। वास्तव में वे जाति-पाति का भेद-भाव के बिना गाँव-गाँव जाकर हर प्रकार के लोगों में पवित्र संस्कारों का सिंचन करने लगे। उन लोगों का जीवन विशुद्ध, निर्व्यसनी, निर्भय, नीतिपूर्ण, पवित्र एवं चरित्रवान बनाने के लिए श्रीराम स्वयं उनका सम्मर्थन करने लगे। कीचड़ से कमल की तरह उन्होंने उतम भक्त तैयार किये। उनके उतम भक्तों में खोजा, वोया, पठान, मुसलमान तथा पासी जाति के लोग भी शामिल हुए थे। जो भी उनके आश्रित हो गए, उनके जीवन उन्होंने शुद्ध और पवित्र कर दिये।

एकतर गढ़पुर में श्रीराम अक्षर ओरंडी में पलंग पर बिराजमान थे कि उन्होंने मूलजी सेट को देखकर पूछा, ‘सेटजी, आप कितना गणित जानते हों?’

‘महाराज! व्यवहार में जितना आवश्यक है, उतना तो जानता ही हूँ।’

‘तो आप कहाँ तक गिनती कर सकते हो?’

‘महाराज!’ मूलजी सेट ने कहा, ‘एक के आगे सत्रह शून्य लगाए जाएँ, वहाँ तक की गिनती तो मैं गिन सकता हूँ।’
‘तौ सुनिए,’ महाराज ने कहा, ‘हमें तो इससे भी अधिक, अनन्त जीवों का कल्याण करना है। हमारे साथ अथवा हमारे हरिभक्त के सम्पर्क में आनेवालों का, उसका पानी पीनेवाले या उनको पिलानेवालों का, उसको भोजन देनेवाले या उनसे भोजन प्राप्त करनेवाले, सभी का कल्याण करना है, उन सबको इस सत्संग में पुनर्जन्म दिलाकर उनका आत्मनितिक कल्याण करना है।’

श्रीहरि की ऐसी सर्वजननिहित भावना और चारी देखकर सारे साधु एवं हरिभक्त आश्रयशक्तिक रह गये। इससे महाराज का इस पृथ्वी पर प्रकट होने का हेतु सब अपने आप समझ गये।

दभाण का यज्ञ

गुजरात के खंडा जिले तक अंग्रेजों का शासन प्रारंभ हो गया था। श्रीहरि की मर्जी जानकर संतों ने अंग्रेज अधिकारियों से मिलकर इस जिले के दभाण गाँव में महान यज्ञस्वर का आयोजन किया। अंग्रेज अधिकारियों ने इस उत्सव के लिए न केवल अनुमति दी, परंतु पूरी सहायता भी प्रदान की।

अगलाह दिन का यज्ञस्वर संवत् 1867 के पीछे महीने में आयोजित हुआ। हजारों ब्राह्मणों को नियंत्रित करके श्रीहरि ने नागरिकों में एकता की भावना बढ़ाने का अनव्य प्रयास किया। परंतु दूसरी ब्राह्मण इस उत्सव में भी विचन डालने पर तुले थे। यो के घड़े तालाब में उंदेलकर वे कोहाराम मचाने लगे कि विधि और रसोई के लिए यह नहीं रहा है। श्रीहरि उनके इरादों को पर्चकर चारों और काठी हरिभक्तों पर का पहरा लगवा दिया। कोहार, यज्ञमण्डप आदि स्थानों पर देखभाल के लिए सत्संगी ब्राह्मणों की नियुक्ति कर दी। यो के खाली पड़े पात्रों के सामने टूटे उनके आदेश दिया कि, ‘इन घड़ों से यह निकालते रहना। यह की कभी नहीं पड़ेगी।’ सत्संगी ब्राह्मण आवश्यकता के अनुसार यह निकालते ही जा रहे थे, लेकिन यो घटने का नाम नहीं लेता था। सभी चकित होकर श्रीहरि की अपार महिमा समझने लगे।

उन दिनों चारों और श्रीहरि की माणकी घोड़ी की चर्चा सुनाई दे रही थी। इस तेजस्वी और शीघ्रवेगी घोड़ी के विषय में घातकी लुटेगा जोबन पगी
को मालूम हुआ तो उसने सोचा कि स्वामिनारायण की घोड़ी कहीं न चुरा ली जाए? यह तीन दिन-तीन रात तक अक्ष्याला की ओर जांच पड़ताल और प्रयास करता रहा। परंतु प्रतिदिन एक और श्रीहरि को गहरी नींद में सोये हुए देखता तो दूसरी ओर अक्ष्याला के प्रत्येक घोड़े के पास घोड़े की सेवा करते हुए देखता। जब भीतर में पश्चाताप भरकर उसने श्रीहरि के समक्ष शरणागति स्वीकार की तब पूरे गुजरात प्रदेश में आक्षेप पूर्ण तहलका मच गया। लुटेरा जोबन अब धर्म में बंदूक-भाले अथवा तलवार के बदले माला घूमने लगा।

इस यज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर श्रीहरि ने भादरा गाँव में अवतार धारण करनेवाले अक्ष्याला मूलजी शर्मा को दीक्षा दी। वे आज स्वामी गुजरातीलान्द बने। इस प्रसंग पर श्रीहरि ने कहा था, ‘ये महान संत हमारे निवास के लिए अक्ष्याला अर्थात् अनादि मूल अक्ष्यान्द्र हैं। वे हमारी मूर्ति को निरंतर देखते हैं ओर हमारे उत्तम ध्वज हैं’। दीक्षा-उस्मज के बाद वैज्ञानिक रामल श्रीहरि के समक्ष राण-रागिनियों में अनेक भक्तिपद प्रस्तुत किए।

तपशातु अथव पर सवा होकर श्रीहरि स्वर्णसित वस्त्राभूषण धारण करके शोभायात्रा पर निकले।

संत कवि निखुलानंदजी उक्त अवसर पर पद्ध रचते हुए गाया कि:
वर निर्गुण रे, धर्म ध्रारूप, आवे छे अनुप, सुरमुनि भूप
शोभे लाल सुरकाल जरी जामा शाल, कपटे मोतीमाल, भरेला भवानीरे लोल...

‘हम पर दया रखिएगा’

अब श्रीहरि का विचारण कच्च-भुज की ओर प्रारंभ हुआ। पुष्पोलोत्सव में पूरे गुजरात से हजारों भक्त श्रीहरि के सत्संग के लिए उमड़ पड़ें। कुछ दिन महाराज के पास रहकर बिदा लेते हुए उन्होंने महाराज की पूजा की। फिर आरारावंद मांगते हुए कहा, ‘महाराज, हम पर दया रखिएगा।’ महाराज ने आशीर्वाद देते हुए उसी बाल को डोहराया, ‘आप लोग भी मुझ पर दया रखिएगा।’

सभी हरिपुज्जा बिना कुछ समझे श्रीहरि के चरण छूकर घर की ओर रवाना हुए। अचानक उनके मन में बिजली की भाँति एक विचार कौंद्यात।
महाराज ने हमें ऐसा कहा कि ‘आप लोग भी हम पर दया रखना?’
सभी एक-दूसरे को इस विषय पर पूछने लगे, परंतु कोई इस बात का रहस्य
नहीं जान पाए। आखिर वे गाँव की सीमा से श्रीहरि के पास वापस लौटे
और चरण चूकर पूछने लगे, ‘प्रभु, आपने हमें दया रखने के लिए कहा वह
tो बिलकुल ही उल्ले गंगा है। आप ऐसा कहने लगे? ’
स्मित करते हुए श्रीहरि कहने लगे, ‘सुनिए, साड़े तीन हाथ की तुम्हारी
देह में छोटी-सी जगह में हदयाकाश है। वहाँ में साक्षी रूप से रहता हूँ।
आप सभी अपना हदय स्वच्छ रखना और सावधान रहना कि वहाँ संसार की
गंगा का प्रवेश न हो। में तुम्हारे भीतर रहकर तुम्हारी सभी क्रियाओं की
निगरानी रखता हूँ। इसलिए विशुद्ध आचरण करना। यदि आपका हदय शुद्ध
होगा तो में वहाँ बड़े आंदोलन कर पाऊँगा। इसलिए आप अंश संकल्प,
अंतर वाणी, और अंचल आचरण करने की दया हमेशा मुझ पर करते
रहना।’ हरिभक्तों को आज नई शिक्षा प्राप्त हुई। तेजस्वी को इसारा काफी
है। उन्होंने श्रीहरि को विश्वास दिलाया कि, वे आचार, उचार और विचार
विशुद्ध रखेंगे और उनकी आजानुसार चलेंगे। महाराज उन पर प्रसन्न हुए। वे
महाराज के चरण चूकर, उनकी आज़ा के अनुसार ही व्यवहार करने की
दृढ़ता बोधकर घर की ओर रवाना हुए।
वास्तव में वे कम शब्दों में भी महान प्रेरणा देकर हरिभक्तों के आचर
एवं व्यवहार को परिशुद्ध करते थे।

कृपासाध्य श्रीजीमहाराज

अंजार के हरभंजी मुतार कुछ हरिभक्तों के साथ 28 कोश चलकर
महाराज के पास आए थे। महाराज के चरण चूकर उन्होंने जय स्वामिनारायण
कहा। परंतु महाराज ने उनकी ओर देखा तक नहीं! वे अपना मुँह ढूंढ़ी और
फेरकर बैठ गए। जय स्वामिनारायण तक नहीं कहा तथा हमेशा की आदत के
अनुसार उनके कुशल समाचार भी नहीं पूछे। हरिभक्तों ने सोचा, ‘हम इतनी
दूर से कई कठिनाइयाँ जिलकर, पन्द्रह दिन पैदल चलकर किसी तरह यहाँ
पहुँचे और महाराज ने हमारे कुशल समाचार तक नहीं पूछे! उल्टा अपना मुँह
भी फेर लिया, कारण क्या हो सकता है?’
हरिभक्तों ने पूछा, 'महाराज! हम लोगों पर दया कीजिए, हमारे कष्टों की ओर तो देखिए।'

महाराज ने कहा, 'आप सोचते हो कि आपने कष्ट उठाये? वास्तव में प्रकृति-पुरुष और अप्स आवरणों से परे हमारा धाम है, वहाँ से एक लाख मन लोगों का गोला मिराने पर वह यहाँ आते हुए वायु के झोंकों से धिलाता-पिसता एक रजकव के बाबर भी नहीं रहेगा। इतनी दूरी से हम करण करके केवल आप लोगों के कल्याण के लिए इस धरती पर आये हैं, यहाँ तुम्हारी तरह रहते हैं, तुम्हारी सेवा को स्वीकार करते हैं। बड़े-बड़े ऋषियों ने हजारों, लाखों वर्ष तपन्य की, फिर भी हम उनके दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं। परंतु आप लोगों को दृष्टिगोचर हो रहे हैं, यह क्या हमारी कम कृपा है?' यह सुनकर सभी अपनी सारे कष्ट भूल गये और भूल समझकर श्रीहरि की क्षमा-याचना करने लगे।

तपस्वी सभा में महाराज ने कहा, 'तुम्हारे कौनः से ऐसे साधन हैं कि हम प्रसन्न हो जाएँ और तुम्हारे साथ इस धरती पर रहें? इस समय तो हम केवल कृपा करके ही इस पृथ्वी पर पार्जर हैं। पहले कई अवतार हो चुके हैं, उन्होंने अपने सम्पर्क में आनेवाले मुश्सु जीवों का ही कल्याण किया है। जबकि हम आज देवी या आसुरी, मुश्सु या सामान्य सभी जीवों का बिना भेद किए कल्याण कर रहे हैं हम किसी जीव अथवा किसी के स्वभाव की ओर नहीं देखते। केवल कृपा करके हम समानभाव से दर्शन, स्पर्शन, प्रसाद, बातचीत, मिलन आदि के द्वारा अनन्त सुख दे रहे हैं। इस प्रकार हम तो कृपा-साध्य हैं। इसलिए परम्परा प्रकट होने पर साधनों तथा क्रियाओं का बल लेना उचित नहीं है।’

सभी श्रीहरि की वाणी का रहस्य समझ गये। उन्होंने कहा, ‘महाराज! आपकी बात ठीक है। इस समय तो आपने अपरंपर करण की है। आपके अपरिमित प्रताप का हमें अनुभव है। हमें सर्वोपरि प्राप्ति हुई है, अतः आपके प्रसन्न करने के सिवा हमारा कोई लक्ष्य नहीं है। हम महाराज! हम तो अल्पक्ष हैं, आप हमारी भूलों की ओर न देखें, हम लोग किसी भी प्रकार से आपके प्रसन्न रख सकें, ऐसी बुद्धि एवं ऐसा बल दीजिए।’
समदर्शी

श्रीहरि की समदर्शिता हर किसी के दिल को छू जाती थी। न वे ऊँच-नीच का भेद रखते थे, न धनवान-गरीब का। उनके लिए जैसी सगराम बाऊँगी की झोपड़ी थी, उसी प्रकार भावनगर या बड़ोदरा के महाराजाओं के महल थे। एकबार वे लोग गाँव में सभा में बिराजमान थे। कथावार्ता के समय जाति से हरिजन गंगाबाई सत्संग के लिए आ पहुँची। महाराज की महिमा सुनकर उसने चूड़ा गाँव से पैदल चलकर यहाँ आने का कष्ट उठाया था।

इस सभा में चूड़ा गाँव की ही दो-तीन उच्च कुल की स्त्रियाँ कथा सुन रही थीं। जैसे ही गंगाबाई उनके निकट बैठने लगीं कि वे नाक-मुँह सिकोड़कर उठने लगीं, श्रीहरि यह सब देख रहे थे। उन्होंने तुरंत कहा, ‘आप गंगा को पास में बैठने क्यों नहीं देते?’ परंतु वे स्त्रियाँ आपस में बड़बड़ाने लगीं। उन्होंने अपना मुँह फेर लिया। तब महाराज ने सुसंवाचर की पत्नी से पूछा, ‘आप लोगों की युक्ति में या चर्चा में जब कोई पशु मर जाता है, तब उसे उठाने के लिए कौन आता है?’

‘वहाँ तो हरिजन ही आते हैं, महाराज।’ उन्होंने कहा।

‘तो युक्ति, चर्चा या घर में पशुओं के मर जाने पर आप जिन्होंने भी आने पर मुँह नहीं बिगाड़ते तो यहाँ आप मुँह क्यों बिगाड़ती हैं? आप नहीं जानते परंतु में जानता हूँ कि गंगा तो मुमुखु जीव है। पूर्वज्ञम में यह नाग ब्राह्मण थी, इसे अपनी उच्च जाति का बड़ा अभिमान था। वह नीच जाति के किसी भक्त का भी आदर नहीं करती। उसका तिरस्कार करती थी। इसलिए वह इस जन्म में हरिजन के घर पैदा हुई है। आप लोग भी यदि ऐसा भेदभाव रखोगे, तो अगले जन्म में आप वैसे ही निमन्त्रण में पैदा होगी और इस सत्ता को हमेशा के लिए लक्ष्य में रखें कि वर्णश्रम का अभिमान रखने वाले कभी साधुता के गुण सिद्ध नहीं कर सकते। इसलिए वर्णश्रम का अभिमान कभी नहीं करना चाहिए।’

[ 10 ]

धर्म भक्ति के दर्शन

चाँदुमास के दिन थे। गढ़पुर में वासुदेवनारायण के मंदिर तथा
दादाखाचर के कमरे के बीच एक दीवार थी। बीच में एक द्वार था, जहाँ बेटकर श्रीहरि कथावात्ता का लाभ देते थे। चासुदेवनारायण के मंदिर में स्त्रियाँ बेचती थीं और दूसरे कमरे में संत-हरिभक्त।

एक दिन महाराज के आसन से प्रकाश पुज़ निकला तथा पुरुषों की सभा में वह शीतल तेज फैल गया। पुरुषों को अन्तरिक्ष में खड़े धर्मदेव की मूर्ति दिखाई दी और स्त्रियाँ की सभा की ओर लाल शीतल तेज फैलता हुआ दिखाई दिया। उनको अन्तरिक्ष में भक्तिदेवी की मूर्ति के दर्शन हुए। बाद में सारा तेज श्रीहरि में समा गया। सभी को बहुत आश्चर्य हुआ।

श्रीहरि कहते लगे, ‘आप जानते हैं कि मेरा स्वभाव यही था कि मैं चार घंटे से ज्यादा किसी एक स्थल पर रुकता नहीं था। परंतु आपको भक्ति ने मुझे वश किया है। इसलिए आप लोगों को हमारे माता-पिता भक्ति और धर्म की मूर्तियों के दर्शन हुए। अब तो वे भी हमारे साथ यहाँ निवास करेंगे।’

उसी दिन एक दूसरी घटना आया। लेकिन रही थी कि हसनबाई कोठरी लाठी गाँव में कुछ काम के लिए गए थे। वहाँ उन्हें एक शिल्पी मिला, जो बेलगाड़ियों में छब्बीस मूर्तियों भरकर कहां जा रहा था। उन मूर्तियों को देखकर हसनबाई ने उससे कहा, ‘आप हमारे साथ गड़पुर चलो, यदि हमारे इष्टदेव को आपकी ये मूर्तियाँ पसंद आ गईं, तो हम रख लेंगे।’ शिल्पी तुरंत समत हुआ। महाराज ने मूल्य देकर मूर्तियाँ खरीद ली। उनमें से दो मूर्तियाँ धर्म और भक्ति के असली स्वरूप से बिल्कुल मिलती-जुलती थीं।

श्रीहरि ने दो कमरों के बीच का द्वार बंद करवाकर वहाँ संवत 1856 (सन 1800) को श्रावण कृष्णा अष्टमी के दिन धर्म और भक्ति की मूर्तियों की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा की।

शोभाराम की आख़ूं गईं

उन दिनों विरोधियों की देश-जंग शात नहीं हुई थी। वे महाराज तथा संतों के विषय में अफवाहें फैलते रहते। कुछ लोग कहते थे कि हम शास्त्रों के प्रमाण देकर सिद्ध कर सकते हैं कि स्वामिनारायण भगवान नहीं हैं। तो कुछ लोग कहते थे कि स्वामिनारायण सम्प्रदाय वैदिक सम्प्रदाय नहीं है। परंतु इस प्रकार में आपाती संवत 1867 के प्रसंग दिये गये हैं।
शोभाराम की आँखें गईं

उनके तर्क परम्पराओं के तकनी के सामने टिकते नहीं थे। फिर भी कुछ हेदों अपना उत्पान्ध सूतना ही नहीं चाहते थे।

ऐसा एक ब्राह्मण गुजरात के छोटे से शहर बीसनगर में रहता था। उसका नाम था, शोभाराम। वह था तो विद्वान, पर महाराज एवं सम्राट का और था। एक दिन वह कुछ साधियों के साथ अपने घर में बैठकर सम्राट की निंदा कर रहा था। एक सत्संगी बलदेवभाई उसी समय वहाँ से गुजरे, उनके कानों पर निंदा के शब्द पड़ गए, तो उन्होंने कहा।

‘शोभाराम! तुम मानो या न मानो परंतु इस सर्दी पर आज यदि कोई भगवान है, तो वे हैं भगवान स्वामिनारायण! उनका पेश्चय और आर्थिक अपार है, उनकी कृपा से लोगों को समाचि लग जाती हैं, घर-घर चमत्कार दिखाते हैं और हिंदू धर्म की शुद्ध परम्परा संचालित कर रहे हैं।

इसलिए कृपया उनका द्रोह छोड़कर आप उनके आश्वित हो जाओ। वे तुम्हारा मोक्ष कर देंगे।’

लेकिन शोभाराम अपनी बिखरता के अंतर्कार में चिल्लाने लगा कि,

‘इतना द्रोह करने पर भी देखो में अच्छा खासा मस्त मजा में घूम रहा हूँ। यदि वे सच्चे भगवान हैं तो जुझे अंधा करके दिखाएं।’

बलदेवभाई ने कहा, ‘शोभाराम! वह क्या माँग रहे हों? भगवान तो सत्यसंकल्प हैं, जाननूनकर उनसे अपना अंधापन करो माँग रहे हों? क्या कोई अच्छी बस्तु नहीं माँग सकते? या फिर तुम्हारी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई हैं?’

शोभाराम और क्रोधित होकर चीखने लगा कि ‘हाँ हाँ, भ्रष्ट-बुद्धि ही सही, में छाती ठोक कर माँग रहा हूँ, यदि तुम्हारे स्वामिनारायण भगवान हैं तो मुझे एक सपनाह के भीतर अंधा कर दें।’

और परिणाम वही हुआ जो वह चाहता था! चार ही दिनों में वह अचानक अंधा हो गया।

श्रीहरि विचरण करते हुए बीसनगर पढ़ो। किसी सत्संगी ने बताया कि शोभाराम नाम का ब्राह्मण अपनी भ्रष्ट-बुद्धि के कारण अंध हो गया है। कहा, यपन वस्तु महाराज के हद में दया आई। महाराज ने कहा, ‘अरे! मेरे कारण ही वह अंधा हो गया? चलो, हम स्वयं जाकर उसको दर्शन दें, उसे शोभाराम को जाकर कहो कि
महाराज तुम्हारे घर आ रहे हैं।’

परंतु ‘विशालकोटे विपिनकुटि’ कहावत के अनुसार शोभाराम की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। उसने हस्तियों को तुककर कह दिया कि ‘मैं स्वामिनारायण से कभी नहीं मिलूँगा।’ उसने श्रीहरि को रोकने के लिए अपने घर के दरवाजे पर दो सिपाही खड़े कर दिये। श्रीहरि को अनदर जाने से दरवाजों ने मना कर दिया, श्रीहरि को बिना आशीर्वाद दिए लौट आना पड़ा। शोभाराम ने अपना शेष जीवन अनन्त अंधकार में बिता दिया। वह न केवल आँखों से बंचित रहा परंतु भगवत साक्षात्कार से भी बंचित रहा।

मूलजी सेठ की पत्नी को दृष्टि का दान

श्रीहरि गुजरात के सुरेन्द्रनगर जिले के लीमली गाँव में पढ़ते थे। यहाँ मूलजी सेठ ने अपने घर श्रीहरि को नियुक्ति किया। वे संत-हस्तियों के साथ उनके घर पढ़ते। अंग्रेजी में सेठ ने श्रीहरि का बड़े सद्भाव से सलाम किया। श्रीहरि उनके कुशल समाचार पूछ रहे थे, तभी एक स्त्री हाथ से दीवार टोली, दीवार का सहारा लेती हुई सेठजी के घर में जा रही थी। सभाजन तो श्रीहरि की ओर देख रहे थे, किन्तु श्रीहरि कि दृष्टि कुछ स्त्री को ओर गई। उन्होंने मूलजी सेठ से पूछा, ‘मूलजी सेठ, वह आपके घर में कौन होता रही है? लगता है शायद वह देख नहीं सकती। इसलिए बेचारी परेशान हो रही है।’ मूलजी सेठ ने संकोच के साथ कहा, ‘महाराज! यह मेरी पत्नी है और उसकी आँखों की रोशनी कई सालों से बुझ चुकी है।’

‘स्त्री के लिए तो अंधापन बड़ा शाप्रूप है।’ श्रीहरि ने कहा, ‘चश्चुरिन जीवन का कफ कम नहीं होता। स्त्री को तो घरकाम करने में, चूल्हा जलाने में, जीवनजन्तुओं से बचने में कितनी कठिनाई होती होगी! बिना किसी की सहायता अंध स्त्री कुछ नहीं कर सकती।’

‘वह तो है महाराज,’ मूलजी सेठ ने कहा, ‘परंतु क्या करें? प्रारंभ में लिखा कोई बदल नहीं सकता। इस दुनिया में कई अंधज ऐसा ही पराधीन जीवन बिताते होंगे। अंधे होने पर भी कामकाज तो रोका नहीं जा सकता!’

श्रीहरि का इनीय कहणा से भर उठा, उन्होंने कहा, ‘परंतु आपकी पत्नी की आँखें होतीं, तो बहुत अच्छा होता।’
मूलजी सेठ ने कहा, ‘वह तो है महाराज।’

श्रीहरि ने मन ही मन कुछ संकल्प किया कि अचानक घर के भीतर से मूलजी सेठ की पत्नी ने आदमी को भेजकर सेठजी को घर में बुलाया। अतः उन्होंने स्वयं में अपने पति से कहने लगी, ‘अजी सुनने हो, मैं सब कुछ देख रही हूँ। महाराज की कृपा तो देखिए!’ इतना कहकर वह श्रीहरि के स्वरूप एवं वस्त्र-आभूषण का वर्णन करने लगी। सेठजी आध्यात्मिक होकर बार-बार श्रीहरि का आभार मानने लगे।

वे अत्यंत उत्साहपूर्वक श्रीहरि के पास आ पहुँचे। श्रीहरि के चरणों में बार-बार दंडवत् प्रणाम करते हुए कहने लगे, ‘आपने बड़ी कृपा की है, महाराज! मेरी पत्नी अब आपकी कृपा से देखने लगी है। उसको आपने सुखी कर दिया। वह हर्षपति आपके प्रत्यक्ष दर्शन के लिए तरसती थी। आपने आज उसका संकल्प परिपूर्ण कर दिया। वास्तव में आप सत्य-संकल्प हैं।’

सेठजी परिवारजनों ने श्रीहरि तथा संतों की बहुत सेवा की। सेठजी समय होने पर सर्वस्त्र समर्पित करके हमेशा के लिए सेवा में जुड़ गए।

[ 11 ]

जीवाखाचर की परिक्षा

श्रावण मास की समाप्ति तक पूरा सीरास्त्र वर्ष की धाराओं की प्रतीक्षा करता रहा था। परंतु सर्वनाश अकाल की स्थिति दिखाई दे रही थी। पशुओं के लिए गायचारी का प्रवर्धन करना भी मुश्किल हो रहा था। लोगों ने महाराज से विनती की ‘हे प्रभु! बिना बरसात के प्राणीमात्र परेशान हैं, कृपा करके इन्द्र को बरसात के लिए आदेश देने की कृपा करें।’

श्रीहरि चौक में पतंग बिराजमान होकर संतों-भक्तों से नारायण जप करवाने लगे। कुछ समय गुजरते ही छोटी-छोटी काली बदरियों से आकाश छा गया। इन्द्र ऐसी स्थिति देखकर क्रोध से जलने लगा। उसको तो इस वर्ष भी बरसना नहीं था परंतु अब शुरू किया तो मानों ऐसा मृपलाभार पाने बरसात कि गाँव के मिट्टी से बने हुए घर स्वयं ही झड़ने लगे।

महाराज जीवाखाचर के राजभवन में बिराजमान थे। उन्होंने जीवाखाचर से कहा, ‘हमने आपको पहले से ही चेतावनी दी थी कि आप मुझे अपने घर इस प्रकरण में आपाती संवत् 1868 के प्रसंग दिये गए हैं।
मत ले चलो। फिर भी आप हमें ले आये। किन्तु अब क्या करेंगे? यह घर तो गिर रहा है, मुझे बताओ कि हमारी अन्य व्यवस्था कहाँ होगी?

‘महाराज! नई ड्योडी में नया और पक्का घर बनवाया है, वहाँ आप चलाएगा।’ जीवाञ्जा ने कहा।

जैसे ही श्रीहरि इस घर में उपस्थित हुए कि उन्होंने भक्तों की परीक्षा करने की इच्छा से कहा, ‘दरबार, हमें जोरों की भूख लगी है, गरम-गरम भोजन खिलाओ’। परंतु दरबार ने देखा कि उस घर के चूहिये, गोहरे, लकड़ी सब कुछ भीग गया था। उन्होंने तुरंत अपने अनाज की खाली कोठियाँ तुड़वाकर नये चूहिये बनवाएँ, मूल्यवान चंदन के पतलून को काटकर
लकड़ी निकाली, चूल्हा जलाया गया और ठीक समय पर महाराज को
गरम गरम रसोई समर्पित की।

वह रात मानो प्रलय की रात थी। गाँव का हर घर इन्द्र के इस तांडव को
देखकर कोहराम मचाने लगा, ‘बचाओ, कोई बचाओ, मेरा घर गिर रहा है।
मेरे घर का छपर नीचे दब गया है, जल्दी कोई आकर मेरे बच्चों और पशुओं
को बचा लो।’ परंतु उसकी चीख में ग्वार की गर्विता में न जाने कहाँ बह गई। जब
पूरा गाँव चिंतातृत होते हुए भी निराश होने था, तो श्रीहरि ड्योडी खोलकर
आवाज की दिशा की ओर दौड़ पड़े। लाखा पटेल और देवा पटेल के घर का
टूटा हुआ छपर अपने कंधे पर रख लिया, उस किसान के बच्छों और पशु
रक्षा करके सभी को मोत के मुंह से बचा लिया।

प्रातः काल होने तक सारा गाँव कमर तक पानी में डूब चुका था।

श्रीहरि स्नान के लिए बिराजमान हुए। सेवक मुकुन्द वर्णी ने श्रीहरि के
कंधे पर लगी चोट का निशान देखा। वे चिंतित होकर पूछने लगे, ‘अरे, यह
क्या? प्रभु आपको यह चोट कैसे लगी?’ श्रीहरि ने कुछ आघात के बाद
आभी रात की घटी घटना कह मुनाई। श्रीहरि की करुणा देखकर उपस्थित
सभी गदसाद हो गए। बरसात बंद होने से पानी भी कम हो चुका था। श्रीहरि
ने कहा, ‘हमारे संतों ने कल से अब तक भोजन में कुछ नहीं खाया। हम
इस गाँव के सद्भाव को देखना चाहते हैं, इसलिए सभी को आदेश है कि
सभी संत घर-घर जाकर अपनी जोली फेलाएँ। और उस भिक्षान से अपनी
उदरपूर्ति करेंगे।’
पवित्र वाणी का नियम

दूसरे दिन श्रीहरि गाँव के सनिष्ठ भक्तराज राठोड भाष्ट्र के घर पधारे। उनकी पत्नी राणबाई दही बिलोकर थाक के कारण विश्राम ले रही थी। बार-बार आराम और बार-बार काम करती हुई इस स्त्री को देखकर महाराज ने पूछा, ‘तुम ऐसा क्यों करती हो?’

राणबाई ने कहा, ‘महाराज, आप देख रहे हैं कि में अकेली हूँ, बिलोने में आमने-सामने दो व्यक्ति हों, तो जल्दी ही और बिना थाक के हो जाता है।’

‘अच्छा!’ महाराज ने कहा और वे स्वयं खड़े होकर राणबाई के सामने बिलोना खौंचने लगे। कुछ ही देर में मक्खन ऊपर आ गया। राणबाई ने श्रीहरि को मिसरी मिलाकर मक्खन दिया और कहा: ‘लीजिए महाराज! यह आपकी सेवा का हिस्सा।’ श्रीहरि ने प्रसन मन से इस भक्तिमती महिला का भाव स्वीकार किया।

जीवाचार के दरबार में संत-हरिकेताओं की सभा हो रही थी। अचानक एक दिगम्बर जोगी सिर पर जटा और हाथ में त्रिशूल लेकर आ पहुँचा। उसके शान्त, पर उंगला से संतप्त चेहरे को देखकर सुरा खाचर के मुँह से निकल गया, ‘गणल कहैं का! नंगा घूम रहा है!’ बाबा सहज मौन रहकर श्रीहरि के चरणस्पर्श करके वहाँ से चुपचाप चले गये।

श्रीहरि ने डांटकर कहा, ‘सुराखाचर! आपने उस वैरागी को अपशब्द क्यों कहा?’

‘महाराज! यह तो हमारी काठियों की टेट भाषा की प्रसादी है। निन्दा हो
या स्तुति, हम तो गधे-गधी से ही आरम्भ करते हैं। हम काठी लोग इस शब्द को सीख लें तो समझते हैं कि सबकुछ सीख लिया।' सुराखाचर ने कहा।

महाराज उनको सीख देते हुए कहने लगे, ‘आपको मालूम नहीं कि वे कोई साधारण वैंगी नहीं थे। साक्षात् शिवजी थे। जो ऐसे रूप में हमारे दर्शन के लिए पढ़ाए थे। आप अनजान में भी अपराध कर बैठे।
आज से नियम लो, कोई सत्संग निन्दा वाणी, अपशब्द या गाली नहीं बोलेगा। जिस मुंह से हम भगवान का नाम लेते हैं, उस मुंह से कुलित वचन बोलना शोभा नहीं देता।
तुमने अपने मुंह में पूछ के साथ गधी रख ली! इसलिए तुम प्रायः में इक्कावन माला फेरना।’ सुराखाचर चरण वन्दना करके श्रीहरि की क्षमा-याचना करने लगे। सभी ने पतित्र वाणी बोलने का नियम लिया।

सुरा खाचर वैंगी के चरणों में भी वन्दना करना चाहते थे, परंतु वे कहीं नहीं मिले। जब उनकी दृष्टि आकाश की ओर गई, वे आकाश में अदृश्य होते हुए दिखाई दिये।

अकाल की भविष्य वाणी

गुजरात के बड़ौदा जिले को कानन प्रदेश कहते हैं। श्रीहरि वहाँ विचरण करके वरताल, डुप्सर, आंतरोली, बड़नगर, विसनगर, ठूँजा, डांगरवा और अडालज होकर जेतलपुर पढ़े। अहमदाबाद के कुछ हरिभक्तों ने यहाँ आकर श्रीहरि से निवेदन किया, 'हे प्रभु! अब आप अहमदाबाद आकर हमारे घर पावन कीजिए।'

श्रीहरि ने कहा, 'आप सभी ने कुछ वर्ष तक धीरज रखी है, अब कुछ और समय ध्यान रखना है। क्योंकि अहमदाबाद का सूबेदार अब भी हमारा द्वेष कर रहा है। हमारे आगमन से यहाँ कुछ उपद्रव खड़ा हो जाए, वह ठीक नहीं है। कुछ समय के बाद अनुकूलता होते ही आप सभी की सारी शुभ इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी।' इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर श्रीहरि वरताल पढ़े।

वे विचरण में जहाँ भी गये, हरिभक्तों को आने वाले अकाल के विषय में भविष्यवाणी करते, और चेतावनी देते हुए कहते, ‘दो साल तक गुजरात
मोक्ष की विद्या

हो सके इतना अनन संग्रह अवश्य कर लेना, अनाज की बरबादी मत करना। धन के अभाव में उधार लेकर भी अनन खरीदकर संग्रह कर लेना। क्योंकि आने वाला समय बड़ा भयंकर एवं विषम होगा। ऐसे अकाल में धर्म क्रम रखकर भगवान का भजन एवं समर्पण करते रहना, हमारा आशीर्वाद है कि हरिभक्तों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।'

वर्तमान में कुछ समय रहकर वे लॉक्सी, भरसजाल होकर लो, नागड़का पढ़ारे। नागड़का में सुरुआत के दरबार में श्रीहरि ने भव्य वसंतोत्सव का आयोजन किया। यहाँ भी अकाल की भविष्यवाणी करके हरिभक्तों को स्व-सुरक्षा के विषय में जागृत किया तत्पश्चातः नागड़का में नादरिया महादेव के दर्शन के लिए पथरे। वहाँ स्वामी की माला तोड़कर एक मनका श्रीहरि ने अपने गले में बाँधा और सभी संत, ब्रह्मचारी एवं हरिभक्तों के गले में एक एक मनका बंधवकार उन्होंने कहा, ‘महादेवजी रूद देखता हैं, वे भयंकर अकाल का संचार करेंगे। तब यह मनका हरिभक्तों के योग्यक्षेत्र का वहन करेगा, ताकि शिवजी प्रसन्न हों और हरिभक्तों को विशेष कष्ट न हो।’

मोक्ष की विद्या

स्वामी नित्यानन्दजी की संस्कृत शिक्षा सम्पन्न हुई थी। वे नागड़का गाँव में श्रीहरि के पास आशीर्वाद लेने के लिए पहुँचे। महाराज ने उनसे श्रीमद्भाग्य की कथा करवाई।

श्रीहरि का अभिप्रयास था कि जो विद्या मोक्ष में उपयोगी हो, वही विद्या उपयोगी है – ‘सा विद्या या विकुलन्त्रे।’ उन्होंने संतों को संस्कृत अध्ययन की आज्ञा अवश्य थी, परन्तु वे पण्डिताओं की अपेक्षा साधुता एवं विश्वुद्ध आचरण को ही विशेष महत्व देते थे। महाराज ने एक बार सत्संग के प्रचारार्थ गुणात्मकन्द स्वामी को वर्पणानुपर जाने की आज्ञा दी।

तब किसी ने कहा, ‘महाराज! वहाँ तो पड़े-लिखे साधु को ही भेजना चाहिए, ये तो उतने पड़े-लिखे नहीं हैं। कहीं प्रश्नोत्तर के समय ये घड़ड़ा न जाएँ।’

श्रीहरि उनको कहने लगे: ‘आप इन्हें पहचानते नहीं, भले ही वे पड़े-
लिखे न हों लेकिन उनका आचरण शुद्ध है, वे साधुता में प्रथम क्रम पर हैं,
वे स्थी-दन से आइकृष्ट होनेवाले नहीं हैं, उनका तो आचरण ही बातें करेगा।
उनकी साधुता ही पण्डताई को शान्त कर देगी।'

स्त्री-लीला नृसिंहनन्दनजी प्रतिदिन प्रत-काल उठकर महाराज के पास दिये
के उजाले में बैठकर ग्रंथपतन किया करते थे, परसु अचानक उनकी वृत्ति
श्रीराम के स्वरूप में एकाग्र हो जाती थी। पुस्तक का पना उनके हाथ में
ज्ञान का त्यों स्थिर रह जाता था। ऐसी स्थिति देखकर कई बार महाराज उन्हें
उलाहना देते थे और कभी थप्पकी मार कर उन्हें सावधान भी करते थे। एक
बार वे भागवत का पना पढ़ रहे थे कि उनकी चिंता-रूप महाराज में तल्लीन
हो गई। वे होश गँवा बेटे और उनके हाथ में भागवत का जो पृष्ठ था, वह
लौट से जल गया।

श्रीराम ने उनको उलाहना देते हुए कहा, 'दोगो हो गये हो क्या?'
नृसिंहनन्दनजी रो पडे और कहने लगे, 'महाराज! दोगो करना में जानता बस,
केवल आपकी मूर्ति के सामने देखते ही मेरी चिंता-रूप स्थिर हो जाती है।
पढ़ाई का होश ही नहीं रहता। कहिए में क्या करहूं?' यह सुनकर महाराज
प्रसन्न होकर कहने लगे, 'अब आप पढ़ाई बंद कर दें, अब आप सबकुछ
पढ़ चुके, पढ़कर या लिख कर जो कुछ सिद्ध किया जाता है, वह आप
सिद्ध कर चुके हो।'

श्रीराम का यह दृढ़ आग्रह था कि विद्या का सम्पादन हमेशा मोक्ष की
साधना बने।

एक दिन श्रीराम ने दीनानाथ भट्ट से पूछा: 'आपको कितने श्लोक
कंटक्स्थ हैं?'

'महाराज! मैंने कई शास्त्रों का अध्ययन किया है, इसके उपरांत मुझे
पुरा श्रीमद भागवत कंटक्स्थ है।'

'ओह हो हो!। तब तो आप ही कहिए कि आपने भागवत से मोक्ष का
साधनरूप कौनसा श्लोक प्राप्त किया है?' महाराज ने पूछा।

'नहीं, महाराज! ऐसा विचार तो मैंने कभी नहीं किया।' भट्टजी बोले।
महाराज ने पून: पूछा, 'भागवत में ऐसा कौन-सा श्लोक है, जो मोक्ष का
द्वार बताता है?' दीनानाथ भट्ट गहरी सोच में पड़ गए। कपाल पर पसीने की
धूँढ़े झलकने लगीं। महाराज ने उनकी दिशा देखकर स्कन्ध बताया और अध्याय भी कहा, परंतु वे कुछ धूँढ़ नहीं पाए। तब महाराज ने कहा,
‘सुनिए इस श्लोक में मोक्ष की चार्ची दिखाई गई हैं:

प्रसंगमजरं पाश्मात्मन: कवयो विदुः।
स एव साधुपु: मोक्षदारमणवृत्तम ।

भट्टजी के अन्तःचृस्थु खुल गये। महाराज ने इस प्रकार केवल विवेक नहीं, परंतु साधुता, सदाचार एवं मोक्ष-प्राप्ति के उपायों का भी विशेष महत्त्व दिखाया है।

अश्लीलता बन्द करवाई

deहालों में विचरण करके स्वामी स्वरुपानन्दजी आदि संत अपनी अपनी मण्डलियों के साथ श्रीहरि के पास आ पहुँचे।

‘स्वामी, आपने कितने मनुष्यों को सत्संग करवाया? दुनिया के मनुष्य कैसे लगे?’ महाराज ने पूछा।

स्वामी ने कहा: ‘महाराज! मैंने बहुत विचरण किया, लेकिन मनुष्य तो इस नीम के पेड़ के नीचे ही देख पाता हूँ।’

श्रीहरि ने अकाल की शान्ति तथा हरिविष्ट की सुरक्षा के लिए नित्यानन्द स्वामी से भागवत की कथा करवाई। कथा समाप्ति के बाद सभी संतों को श्रीहरि ने रुद्रक्ष का मनका दिया। वहाँ से सारंगपुर आकर पुष्पवलोकत्वव का आयोजन करने लगे। यहाँ उन्होंने पूरे जुगरात में विचरण कर रहे संतों को निमंत्रण दिया। गाँव के बाहर होली जलाकर पूजाविवेच की गई। श्रीहरि ने उन्होंने दूध की धारा के साथ होली की प्रदक्षिणा की, और श्रीफल का होम किया।

वे लोगों को इस उत्सव में बीभत्सता पूर्ण आचरण करते हुए देख रहे थे, उन्होंने उत्सव की इस विकृति को मिटाने के लिए माणकी घोड़ी पर सवार होकर अनुयायियों को प्रतिज्ञा दी और कहा, ‘होलिका तो स्वयं सती

9. इस जीव का अपने संग-समबन्धियों के प्रति जैसा लगाव – प्रसंग है, यदि वैसा ही लगाव भगवान के एकान्तिक साधुओं के प्रति हो जाए तो मान लो जीव के लिए मोक्ष का द्वार खुल गया।
है, उसके उत्सव में एक भी अपशब्द नहीं बोलना चाहिए, बीमार आचरण से दूर रहना चाहिए, अस्तलील गीत नहीं गाने चाहिए। अनेक कुशलाओं को दूर करके भक्तपूर्ण रीति से उत्सव मनाना चाहिए। क्योंकि हम हरिभक्तों को दुराचरण शोभा नहीं देता। सारे संस्कार से आज यह प्रतिज्ञा करें कि आज से वे मुक्तानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी और प्रेमानन्द स्वामी आदि संतों द्वारा रचित ‘होली के पदों’ को ही गाएँगे।

तपायु श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी और प्रेमानन्द स्वामी आदि को हिंदोला, फूलडोल, होली आदि उत्सवों के पदों की रचना का आदेश दिया। आज भी कामक्रोधादि अति:श्रृङ्खला पर प्रहार करने वाले पदों की रचना संस्कृत समुदाय में बड़े भाव से गाई जाती है। इस प्रकार महाराज ने केवल समाज के दूषण को ही दूर कर रहे थे, अन्य अच्छे प्रथाओं और आदरों का स्थापन करवाकर धर्म, नीति एवं भक्ति से लोक-जीवन को ओत्तर व्यवहार कर रहे थे।

धूलेटी के दिन महाराज अपने साथियों के साथ रंगोलिस्व खेलते रहे।

उन्होंने सबको रंगों से सराबोर कर दिया। बाद में गाँव के बाहर नाव अंतरण कुण्ड में स्नान करके लौट रहे थे कि गढ़वा से गुणातीतानन्द स्वामी तथा निष्कलानन्द स्वामी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दंडवत प्रणाम किया तब महाराज पूछने लगे, ‘कहिए हमारे लिए क्या भेंट लाये हो?’ इतना कहकर उनके द्वारा दिये गये पुष्पाहर आदि को स्वीकार किया।

उत्तर गुजरात से आई श्री–हरिभक्तों ने महाराज के पास आशीर्वाद माँगते हुए कहा, ‘हे महाराज! आपकी माया में हम फँसे नहीं, हमारे अंतःकरण में कामक्रोधादि व्याप्त न हों, आपका स्वरूप हमें निरोध दिखाई दे, हमारा चित्त किसी भी अभाव–अवगुण की ओर आकृष्ट न हो, ऐसा वरदान दीजिए।’ महाराज ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया।

संतों ने महाराज को पूजन किया, उसके बाद महाराज पलंग पर लेट गये। तब महानुभावानन्द स्वामी ने उनके पैर दबाने के लिए हाथ पसारे, महाराज ने अपने पैर चढ़ाने के भीतर खोच लिए।

महानुभावानन्द स्वामी ने पूछा, ‘यह क्या महाराज? हमने आपके इन चरणों की प्राप्ति के लिए तो धरबार छोड़ा है, कष्ट सहन किये हैं, जंगल-
गुणातीत की महिमा

जंगल भटके हैं, सर्दी-गर्मी-गाली-अपमान सब कुछ सहा, तप किया, तो क्या हम आपके चरणों की सेवा के अधिकारी नहीं हैं?

श्रीहरि ने मुस्कुराते हुए उनको यह उत्तर दिया, ‘कोई भिखारी सेठ के आँगन में झाड़ू लगाता है, जो कि एक पेसे का काम है और उसके बदले में सेठ से आधा मन स्वर्ण माँगे, तो क्या वह देगा? इसी प्रकार आप शोड़ी सी साधना के बदले में आधेमन स्वर्ण माँगने जैसी जुरैत करते हो। इन चरणों की प्राप्ति के लिए तो बड़े-बड़े ऋण-मुनियों ने हजारों वर्षों तक तप किया है, अपनी हड़प्पाएं एवं मांस गला दिया है। फिर भी उन्हें चरण नहीं मिले। तो आपको ये चरण कैसे मिल सकते हैं?

महानुभवानंद स्वामी विनयपत्रपुर्वक कहने लगे : ‘हे महाराज! आप सर्वाधिक हैं। हम न तो ऋण-मुनि हैं और न ही तपस्वी हैं। उनके तप के सामने हमारा तप कुछ भी नहीं है, लेकिन एक ब्रत है कि आपके चरणार्थिन में लगे हमारे मन को इन्द्र, ब्रह्मा दि यदि चलित करना चाहें तो उनको भी सफलता नहीं मिलेगी।’

यह सुनकर महाराज प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वामी की छात्री में अपने चरणार्थिन के चिह्न दिये और अपनी चरणसेवा के लिए सम्मति भी की।

गुणातीत की महिमा

पुष्पोदलोत्सव के बाद महाराज ने सारंगपुर के ठाकुर जीवाखाचर के दरबार में निवास किया था। भक्तराज राठोड़ धाथल के घर भी कुछ समय तक रहे थे। उनके आँगन में श्रीहरि ने रंगांग होली और धुलंगी के उत्सव का अन्य साथ दिया। संतों ने श्रीहरि का पूजन किया। उसी रात यहाँ महाराज ने संतों के साथ भव्य रास रचा। रास खेलते हुए श्रीहरि कबीरजी के पद गा रहे थे :

‘जोगिया टारत जन्म का फांसला’

प्रेम का च्याला जोगिया, जुग जुग जियो जोगिया।

गाते हुए वे अपनी छछड़ी गुणातीतानंद स्वामी की छात्री पर रखकर एक और पद गाने लगे :
‘कोटि कृष्ण जोड़े हाथ, कोटि विष्णु नमे माथ,
कोटि शंकर करे ध्यान, कोटि ब्रह्म कथे ज्ञान,
sदगुरू खेले वसनत।’
अंत में जब गाना संपन्न हुआ, तब खड़े रहकर उन्होंने पूछा, ‘संतों इस पद में वर्णित सदगुरू आज कौन हैं?’
आनन्द स्वामी और मुक्तानन्द स्वामी ने कहा, ‘महाराज! ऐसे सदागुरु तो आप ही हैं।’

तब महाराज ने कहा, ‘यह तो सदागुरु की महिमा है। हम तो साक्षात् पुरुषोत्तम नायिक हैं। ऐसे सदागुरु तो अक्षरक्ष्य के अवतार तो गुणातीतानन्द स्वामी हैं। कबीरजी अक्षरक्ष्य को सदागुरु-साहब कहकर आराधना करते थे। वही अक्षरक्ष्य ये गुणातीतानंदजी हैं। साकार रूप में वे निरंतर हमारी सेवा में रहते हैं और निराकार एकरस चैतन्यरूप से धाम के रूप में वे पुरुषोत्तम और अनन्त मुक्तों को धारण कर रहे हैं।’

हर कोई इस छोटे और नये संत की अपरिमित महिमा सुनकर आश्चर्यमुद्ध हुए। उस रात बड़ी देर तक रास खेलकर श्रीहरि ने संतों को अपार आनंदित किया।

नवाब का निश्चय

जूनगढ़ में शिवभक्त नागर ब्रह्मण रहते थे। वे राज्य में अधिकारी पद पर नियुक्त थे उनमें से कुछ भगवान स्वामिनारायण का अकारण विरोध कर रहे थे। जब उनको पता चला कि कुछ अनुषवायी श्रीहरि को जूनगढ़ में निमंत्रित करके बड़ी धूमधाम से उनका सम्मान करेंगे, तो वे विभिन्त तरीकों से नवाब को उकसाने लगे। शहर के नयब दीवान ने नवाब को कहलाया कि ‘स्वामिनारायण अपने बहुत सारे आदर्शों के साथ जूनगढ़ आ रहे हैं, वे युद्ध करके आपका राज्य हड़पने का प्रयास करेंगे।

परन्तु नवाब मुमुशु प्रकृति का शासक था। उसने कहा, ‘सुनिये भाई जान, यह तो खुदा का राज्य है, यदि स्वामिनारायण खुदा ही हों तो भले ही राज्य ले ले। उनको जूनगढ़ में आने में कोई रूकावट नहीं होनी चाहिए।’ तत्परता नवाब ने दूर के द्वारा श्रीहरि को जूनगढ़ में प्रवेश करने की अनुमति भिजवा दी।

हरिभक्तों ने जूनगढ़ में श्रीहरि की भव्य सरारी निकालकर अभूतपूर्व स्वागत किया। श्रीहरि के लिए हाथी पर आसन रखा गया था। जब वे गज सवारी के साथ धीरे-धीरे नवाब की कच्चरी के पास पहुँचे तब एक छोटीदार का लड़का हाथ में ककड़ी लेकर दौड़ता-भगता श्रीहरि के निकट जा पहुँचा। वह अपना हाथ उठाकर महाराज को ककड़ी दिखाने लगा।
उसकी ककड़ी देने की इच्छा देखकर श्रीहरि ने उस लड़के को ककड़ी उड़ाने का संकेत किया। जैसे ही उसने ककड़ी फेंकी, श्रीहरि ने उसे पकड़ ली और उस के प्रेमवश हजारों लोगों को देखते हुए हाथी के ओहदे पर बैठे हुए ही ककड़ी खाना आरंभ कर दिया। पूरा शहर महाराज की सवारी का दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ा था।

नवाब भी अपने कक्ष के झरोखे से इस नगरायात्रा को देख रहा था। ठीक पास में खड़ा हुआ दुर्गा दीवान उसके कान में जहर डाल रहा था। उसने तिरस्कार पैदा करने के लिए ही नवाब से कहा, ‘देखिए, ये भगवान कहलाते हैं! इनमें कुछ विवेक भी है? वे उसी प्रकार ककड़ी खा रहे हैं, मानों जीवन में कभी ककड़ी देखी ही न हो! हाथी पर सवार होकर उस प्रकार खाना क्या उनको शोभा देता है?’

नवाब मुमुक्षु ही नहीं, बुद्धिमान भी था। उसने तुर्पत कहा, ‘दीवान साहब, एक बात समझ लो इस स्थानमार्ग से खुदा या खुदा का आलिया ही होना चाहिए। अन्यथा जिसकी सवारी देखने के लिए सारा शहर उमड़ पड़ा हो, ऐसी स्थिति में हाथी पर बैठकर ककड़ी खाने को हिम्मत कोई नहीं कर सकता।’

नवाब को श्रीहरि के स्वरूप में खुदा के दर्शन हुए।
संवत् ई० १८६९ के वर्ष में अकाल

महाराज सारंगपुर, गढ़डा, गौड़ल, जेतपुर, धोराजी, वंथली, आखा,
पीपलाणा और मेघपुर हंकर पंचाला पधारे थे। आनेवाले अकाल के दिनों में
अपने भक्त और गाँव के ठाकुर झीणाभाई के द्वारा सोलह सौ मन ज्यारे
कोठियों में भरवा दी थी।

संवत् ई० १८६९ के वर्ष का आरम्भ हुआ। महाराज महादेव स्वयं ब्राह्मण
का रूप धारण करके महाराज के पास आए और बोले: ‘हे प्रभु, इस धरती
पर पाप इतने बढ़ गये हैं, कि वाममार्गी, शक्तिपंथी और कुड़ापंथी लोग
परवान चढ़ रहे हैं। उन्होंने ने आपके संतों और हरिभक्तों को बहुत परेशान
किया है, इसलिए अकाल तो अवस्थ पड़ैगा, लेकिन आपके संतों और
हरिभक्तों को अकाल की ओँच नहीं लगनी। आप इन दिनों गुजरवस में
रहिएगा।’ इत्तना कहकर महाराज अदुश्य हो गये।

वर्षाक्रतु के चारों महीनों में एक बूँद भी पानी नहीं बरसा। दादाखाचर
के दरबार में जो तीन कमरे थे, उनके नाम क्रम से गुजरात, सोरायर्टी और
कच्च रक्ष दिये गये थे। महाराज उनहीं कमरों में गुप्त रूप से रहते थे। सभी
संतों को कच्च और गुजरात में भेज दिये थे। कई से कोई संत गढ़डा
आकर महाराज के बारे में पूछता था तो दादाखाचर कह देते थे, ‘महाराज
आज कच्च में हैं अथवा गुजरात में हैं।’ इस प्रकार ‘नरो वा कुंजरो वा’ की
नीति का अनुसरण करना पड़ता था।

भयानक अकाल का समय शुरु हुआ । गाँव के गाँव उजड़ गये। कितने
ही घर खाली हो गये। हजारों मनुष्य एवं पशु मर गये। महाराज ने कई काठी
हरिभक्तों को गुजरात के हरिभक्तों के घर भेज दिये। एक दिन महाराज एक
वर्षी के साथ गढ़डा से चुपचाप निकलकर मेठाण पड़वे। वहाँ वे देवशंकर,
काकुजी और पूजाभाई के घर बारी-बारी से छिपकर रहते थे।

लाड़ूबा और जीवुबा को महाराज के इस तरह बिदा होने से बहुत
दुख हुआ। उन्होंने नाजा जोरिया को महाराज को खोजने के लिए भेजा।
मेठाण गाँव की सीमा पर उसने ख्यास जाति की एक लड़की से पूछा, तो
इस प्रकरण में आपाती संवत् ई० १८६९ के प्रसंग दिये गये हैं।
उसने पूजाभाई के घर का रस्ता बताया। उसने महाराज को जीवुबा और लाडूबा के विरह के दुख की कथा सुनाई। महाराज ने पूजाभाई और उनकी पत्नी जीजीबा से छुट्टी मांगते हुए कहा, 'अब हम कल ही गढ़डा जाएँगे।'

उसी दिन रात को जीजीबा को दर्शन देकर लक्ष्मीजी ने कहा, 'अब तुम चिन्ता मत करो, मैं सेवा के लिए उनके पीछे-पीछे जाऊँगी तथा हरिभक्तों के लिए सुकल करूँगी।' उन्होंने यह बात महाराज से कही। महाराज उनको आशीर्वाद देकर गढ़डा वापस लौटे।

अकाल ने बिदा ली, सुकल आया

सन 1812 (आ.सं. 1869) का वर्ष पानी के अभाव के कारण अकाल का वर्ष था। श्रीहरि ने संतों को दूरध, घी, मिष्टान्न आदि का त्याग करने का नियम दिया था। महाराज का प्रसन्न करने के लिए सभी परमहंसों की कंठी में स्वराक्ष का एक-एक मनका पिरोंकर पहनने की आज्ञा दी थी। संतों के घर (छह प्रकार के रस से रहित) भोजन के प्रत का एक वर्ष बीत चुका था। श्रीहरि ने गढ़पुर में होली का उत्सव करने का आयोजन किया। संतों तथा विभिन्न प्रांत के हरिभक्तों को श्रीहरि ने स्वयं अनेक पत्र लिखकर निमंत्रण दिया। सभी गढ़पुर की ओर आने लगे तब उनके स्वागत के लिए श्रीहरि सारंगपुर के निकट लगभग 50 किलोमीटर दूर कुंडल गाँव तक पढ़े।

कुंडल में वे मामैया और अमरा पट्टर के दरबार भूवन में ठहरे थे। विचरण करते हुए संत वहाँ आ पहुँचे। उनके दुर्बल शरीर देखकर हरिभक्तों की आँखें नम हो गईं। सभी हरिभक्तों ने मिलकर श्रीहरि के वर्चण में प्रणाम करके बांधन बांधना की कि हे महाराज, संतों के कठिन वर्तमान का छोड़कर उनको ठीक तरह से भोजन करने की आज्ञा दीजिए।

मामैया पट्टर की माता राईबाई ने तो यहाँ तक कहा कि ‘महाराज, आपको ऐसा तपस्वी वेश बना रखने की क्या आवश्यकता है? यह जटा निकलवाकर का स्वराक्ष को छोड़कर तुलसी की माला धारण कीजिए। जब
आप अच्छे भोजन का आरम्भ करेंगे तभी संतों को भी नीरस भोजन से छुटकारा मिलेगा। जब संत ही कमजोर और दबरें रहेंगे तो पूरा संसार अकाल से ग्रस्त ही रहेगा। इसलिए प्रसन्न और प्रफुल्लित होकर हमारे घर सभी संतों के भोजनपत्रों को सरस पदार्थों से छलका दीजिए, तभी संसार की स्थिति संपन्न होगी, बरसात भी अच्छी होगी, धरती धन-धान्य से हरियाली होगी, अन्यथा धरती के रस-कस समाप्त हो जाएगे।’

राईबाई की यह निर्दौष्ट प्रार्थना सुनकर श्रीहरि प्रसन्न हुए। महाराज ने जटा का ल्यार करके संतों को पद्मस के नियम छोड़ देने का आदेश दिया। उन्हें स्राक्ष के बदले में तुलसी की माला धारण करवाई। इस प्रकार श्रीहरि ने अकाल को हटाया और सुकाल को स्थापित किया। हरिभक्त धनधान्य से समृद्ध होने लगे। बरसात के बाद श्रीहरि कारियाणी होते हुए गझुड़ा पत्थरे।

यहाँ होली तथा जनमाष्टमी के उत्सव के बाद श्रीहरि पुनः विचरण के लिए निकल पड़े।

[ 13 ]

जालिया में बीमारी ग्रहन की

जुनागढ़ जिले में पंचाला, माणावर आदि गाँवों में विचरण करते हुए श्रीहरि एकबार वरजांग जालिया में पधारे।

वहाँ हीरा ठकर बहुत सन्निश्च हरिभक्त थे। श्रीहरि उनके घर पधारे। आज श्रीहरि का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्होंने हीराभाई से कहा, ‘हीराभाई, आज मेरा शरीर अस्वस्थ है, मुझे आराम के लिए कोई एकान्त स्थान हो तो कहो, हम कुछ दिन के लिए आपके गाँव में रहेंगे।’ हीरा ठकर ने श्रीहरि के लिए तुरंत अपना घर खाली कर दिया। श्रीहरि की अस्वस्थता बढ़ रही थी। बुखार के कारण सारा शरीर जल रहा था।

देखते-देखते ही यह खबर चारों ओर फैल गई। सभी संत कुशल-समाचार पूछने आने लगे। महाराज ने खाना-पीना बंद कर दिया। ग्यारह उपवास हुए तब उनके लिए उठना, वैठना और चलना तक कठिन हो गया। बारहवें दिन सभी संतों-हरिभक्तों ने प्रणाम करके श्रीहरि से प्रार्थना की, इस प्रकरण में आपाती संबंधत 1870 के प्रसंग दिये गये हैं।
‘प्रभु, बीमारी छोड़कर आप कुछ भोजन अंगीकार कीजिए, ताकि शरीर स्वस्थ और सशक्त होने लगे।’ महाराज ने धोड़ा-सा अंगीकार किया।

सभी बार-बार प्रार्थना करने लगे कि कृपा करके आप पुनः पहले के समान स्वास्थ्य ग्रहण करें। आप जो भी कहेंगे हम उसी प्रकार करेंगे, कृपया आप बीमारी का त्याग कर दें।

श्रीहरि ने कहा, ‘तब तो हमें बीमारी छोड़कर स्वस्थ होना ही है। लाइए, पेड़े, बर्फी और जलबी लेआए। मिठाई खाने के बाद हम बीमारी छोड़ देंगे।’ हीराभाई और उनकी पत्नी केसरबाई उसी रात भागावदर में एक हलवाई के घर जा पहुँचे। उसे जगाकर गरमागरम जलबी खाते करवाई। एक बरतन में लेकर वे बापस लौटे। महाराज ने दो-तीन जलबियाँ खाई, धोड़ा-सा विश्राम किया और दूसरे दिन संतों-भक्तों से कहने लगे, ‘आज तो हमें ठंडे पानी से स्नान करना है। मुझ पर इतना पानी डालो कि उसका प्रवाह यहाँ से बेणु नदी तक जा पहुँचे। ऐसा वृहद स्नान करके में स्वस्थ हो जाऊँगा।’

श्रीहरि का आदेश सुनकर गाँव की महिलाओं ने नदी से घड़े भरकर हीराभाई के आगान में लाने की सेवा अपने सिर उठा ली। श्रीहरि आगान में चौकी पर बैठकर स्नान करने लगे। नाजा भक्त और भगुजी श्रीहरि की सेवा कर रहे थे। मुकुंद ब्रह्मचारी ने यह देखकर सोचा, महाराज यदि ठंडे पानी से इसी प्रकार स्नान करते रहेंगे तो निश्चित ही सदी और जुकाम की पीड़ा बढ़ जाएँगी। उन्होंने तुरंत चौकी के नीचे एक थाली रखवा दी, उसमें धोड़ा-सा पानी इकट्ठा हुआ कि उसे किसी हरिभक्त के द्वारा नदी में डलवा दिया। श्रीहरि ने अनन्यमीभव से पूछा, ‘ब्रह्मचारीजी, क्या पानी का प्रवाह नदी तक पहुँच गया?’

‘जी महाराज!’ ब्रह्मचारी ने तुरंत उत्तर दिया।

श्रीहरि ने कहा, ‘अच्छा, तो अब पानी बन्द करो, हम भले चंगे हो गये हैं। अब हम इमली और आरिया खाएँगे।’ तत्त्व चकर वे वस्त्र बदल कर इमली और आरिया का प्रसाद खाने लगे। श्रीहरि ने इस गाँव में एक महीने तक अनेक दिव्य चरित्र किये। तत्पश्चात् गढ़ड़ा में अनकूट का उत्सव किया।
कबूतर के कबूतर

श्रीहरि इस धार्मिक पर इसीलिए प्रकट हुए थे कि उनके अपने स्वरूप का सभी को यथार्थ निष्ठ्य हो तथा उनका आत्मवाद कल्याण हो। इसी उद्देश्य के साथ वे कभी-कभी अपनी सर्वोपरिता के विषय में बातें किया करते थे।

लोग, नाग़ड़ा का पंचाला आदि गाँवों में उन्होंने परमहंसों को अपने पास खिलाए आठ महीने तक अपनी सर्वोपरिता को बातें कहते थे। वे कहते थे कि मेरा जो अक्षरधार्म है, सभी धार्मिक सो पर्याय है। वह ने माना कि कोई अंश नहीं है, वहाँ जीव-पुरुष का भी कोई भाव नहीं है। अर्थ, वस्त्र, भाग, इंद्र, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, महेश, अरर्रर, प्रभुमान आदि वेद तथा रामचन्द्र, नर्मदारण, श्रीकृष्ण, वैराजपुरुष आदि अवतारों से परे जो अक्षरधार्म है, उससे भी परे हैं, परंतु लोकसंग्रह के कारण में स्वयं को रामकृष्ण आदि के समक्ष भी कहता है। अप्पे लोगों के आनंद एवं सुख के लिए मैंने मनुष्यरूप धारण किया है। मेरा अवतार तो अविदा का नाश करके एकात्मक स्थिति को प्राप्त करने के लिए ही हुआ है। जिससे जीवों का आत्मवाद कल्याण सिद्ध हो।

ऐसी अंतर बातों उन्होंने परमहंसों को सुनाई। परंतु आठ महीने तक सविकृत सुनने के बाद जब वे सब विचरण के लिए गाँव-गाँव जा रहे थे तब उन्होंने श्रीहरि के चरणों में प्रारंभना करके आशीर्वाद की कामना की, ‘हेमहाराज! हम गाँव-गाँव लोगों को सदाचारी बनाने के लिए जाएँगे तब हम आपके परिचय के विषय में क्या कहें?’

श्रीहरि ने कहा, ‘यदि लोग पूछें तो कह देना कि हमारे भगवान स्वामिनारायण दत्तात्रेय, कपिल और व्यास जैसे महान हैं और यदि भूमनवाला अच्छा मुमुख हों हो तो उन्हें बताना कि स्वामिनारायण भगवान राम और कृष्ण के समान समर्थ हैं।’

‘ठीक है महाराज!’ इतना कहकर वे भोलेश्वाले परमहंस देहातों में विचरण करने निकल पड़े। कुछ महीनों के बाद वे गदनार वापस लौटे तो श्रीहरि उनको कुशल समाचार पूछने लगे, ‘संस्कृत, आप गाँव-गाँव जाकर
हमारे महिमा की क्या बातें करते थे? तुम लोगों ने देखाएं में क्या बातें कीं?
हमारा क्या परिचय दिया?' कुछ परम्पराओं ने कहा, 'महाराज! हम लोगों ने आपको दत्तात्रय, कबिल और व्यास के समान समर्थ बताए.' कुछ परम्पराओं ने कहा, 'प्रभु! हमने आपको राम और कृष्ण के अवतारों की उपमा दी थी.' तो बहुत ही कम परम्परां ऐसे थे जिन्होंने श्रीहरि को सर्वोपरि एवं अवतारों के अवतारी के रूप में परिचय दिया था।

यह सुनकर श्रीहरि मार्मिक स्मल करते हुए कहने लगे, 'बहुत अच्छा किया।' फिर कहा, 'आप लोग कबूतर के कबूतर ही रहे। जैसे भोजन में खीर, मालपुआ, पूढ़ी, सांग, दलहन, कढ़ी, भात के साथ यदि मूली खाई हो तो डाकार मूली की ही आएगी, न कि अन्य पदार्थों की। उसी तरह मैंने आप सभी को अपने स्वरूप की यथार्थ महिमा बताई, लेकिन आप कुछ भी नहीं समझे, सभी कबूतर के कबूतर ही रहे। यदि आप लोग मेरे स्वरूप की सर्वोपरिता समझ होते, तो आप उसे बिना बताये रह ही नहीं सकते थे।'

यह सुनकर परम्पराओं को अपनी भूत समझ में आ गई। जिन्होंने श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप की यथार्थ महिमा समझाकर उनको अवतारों के अवतारी बताया था, वे प्रसन दुए। श्रीहरि की मार्मिक वाणी में यहीं संकेत था कि लोक और शास्त्रों के शब्दों का विचारहीन बंधन छोड़ देना चाहिए, तभी श्रीहरि की यथार्थ महिमा फैलाई जा सकती है।

[ 14 ]

गरीबलियाज

गुजरात के महेसाण जिले में श्रीहरि बड़ू तथा कर्जीसिंह गाँव में पधरे। वहाँ एक मास तक उन्होंने निवास किया। इस वर्ष सौराष्ट्र में वर्षा कम होने के कारण हरिभक्त समुदाय श्रीहरि तथा अन्य को सुविधा नहीं कर सकते थे। इसी कारण श्रीहरि ने संतों-हरिभक्तों को कर्जीसिंह में धूमधाम से जन्माष्टमी का महोत्सव मनाया। कृष्णजन्म के समय हरिभक्तों ने पंचमूल भरे श्रीहरि के चरणार्क रहे, उन्होंने नये बस्तर पहनाये, बराबर के पेड़ पर झुला बाँधकर, श्रीहरि को झुलाये। अमावस्या तक संतों तथा हरिभक्तों को अपने सानिध्य का आनंद देकर बिदा किया। वे स्वयं इस प्रकरण में आपाने संवत 1871 के प्रसंग दिये गये हैं।
कर्जीसं, मोऊ और लांघणोजमें गुप्त बाप में रहने लगे।

गुजरात के महेसाणा जिले के लांघणज गाँव में एक गरीब महिला
रहती थी। उसका नाम सोनबाई था। एक दिन उसने डरते-डरते श्रीहरि को
भोजन के लिए, आमंत्रित किया। महाराज ने उसके आमंत्रण को तुरन्त
स्वीकार किया।

वह तो प्रसन्न होकर भोजन की तैयारी करने लगी। सोनबाई के पढ़ोस
में एक श्रीमंत ब्राह्मण हरिभक्त का घर था। उसकी पत्नी गंगाबाई को
अपनी संपत्ति का भारी घमंड था।

जब उसे पता चला कि महाराज सोनबाई के यहाँ आ रहे हैं, तो वह
सोनबाई के घर जा पहुँची, ‘अरी सोनबाई, तेरे कुछ दिमाग है या नहीं?
महाराज तो पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण हैं, उनको उत्तम वस्तु ही निवेदित की जा
सकती हैं।’

सोनबाई उदास होकर बोली, ‘मेरे पास तो ऐसा उत्तम अनाज नहीं है,
में क्या करूँ?’

गंगाबाई कहने लगी, ‘तू चिता मत कर। मेरे पास उत्तम प्रकार के गेहूं,
चावल, दाल आदि हैं। में अपने घर रसोई बनाकर शाल तैयार करके यहाँ
आ जाऊँगी और महाराज को खिलाऊँगी और तू संतों एवं हरिभक्तों को
खिलाना।’

सोनबाई का गला भर आया। हाँलांकि उसके मन में यह घर कर गया
था कि महाराज को सबकुछ श्रेष्ठ अर्पण करना चाहिए, किंतु मेरे पास तो
ऐसा कुछ भी नहीं।

रसोई तैयार करते हुए उसकी आँखें भीम जाती थीं। उसे एक ही
विचार सता रहा था, क्या महाराज मेरी रसोई अंगीकार नहीं करेंगे?

रसोई तैयार करके वह दहलीज पर बैठकर श्रीहरि की प्रतीक्षा करने
लगी। महाराज सोनबाई के घर आ पहुँचे। सोनबाई ने सभी के लिए आसन
का प्रबन्ध किया। बैठके ही महाराज ने पूछा, ‘क्यों बाई, उदास क्यों दिखा
रही हो?’

इतना सुनते ही सोनबाई की आँखों से आँपुओं की धार बहने लगी।
वह रोती हुई बोली, ‘मैंने आपके लिए बड़े भाव से रसोई बनाई है, परन्तु
मेरे पास तो हलके गेहुँ, चावल और दाल थे। स्वयं भगवान पुरुषोत्तम नारायण को मुझे तो उत्तमोत्तम भोजन परोसना चाहिए। परन्तु मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है। मैं क्या करूँ?

श्रीहरि यह सुनकर भावार्द होकर मुस्कुराने लगे, ‘अरे बाई, कौन कहता है कि तुम्हारे पर में गेहुँ, चावल और दाल हलके हैं ? जिसकी भावना उत्तम से भी उत्तम है, उसका अनाज भला, हलका कैसे हो सकता है? लाओ हमारा थाल और परोसो जो तुम्हें बनाया है।' 

सोनबाई के अंतर में उमंगों की फुहार फूटने लगी। श्रीहरि ने उनके पर बड़े भाव से भोजन किया।

कुछ ही देर में गंगाबाई वहाँ आ पहुँची, ‘महाराज, आपके लिए सबौतम गेहुँ, चावल, दाल आदि की रसोई ब्राह्मण से भनवाकर लाई हूँ।'

महाराज ने उद्धर देखे बिना ही कहा, ‘सोनबाई की रसोई मुझे बहुत पसंद आई। अरे कुछ अधिक ही खा लिया। तुम्हारा थाल में तुम्हीं को देता हूँ, मेरी प्रसादी समझकर सोनबाई और तुम दोनों प्रसाद समझकर खा लो।' 

गंगाबाई को अपनी भूल समझ में आ गई और सोनबाई की भक्ति का आदर करने लगी।

**भगवान की गद्दी**

शाम का समय था। गढपुर में दादाखाचर के दरबार में खुर्सी द्वारा के मोटिवा के कर्मर में श्रीहरि सभा के सामने पलंग पर बिराजमान थे। वहाँ एक ब्राह्मण ज्योतिषी आ पहुँचा। वह गणित, फलित ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र एवं खगोल का अच्छा विद्वान था। महाराज ने उसका स्वागत किया।

मूक्ष्म दृष्टि से वह श्रीहरि की भींहें, नाक, आँखें, ‘भाल, तिलक आदि देखकर बोला, ‘आप उत्तर भारत के ब्राह्मण हैं, पांडे हरिप्रसाद के पुत्र हैं, आप यहाँ भगवान होकर कैसे बैठ गये हैं?’

श्रीहरि मजाक के स्वर में कहने लगे, ‘विप्रवर! हम घर छोड़कर निकले, उस दिन से आज दिन तक हमने कई राजपत्र देखे, वहाँ कर्म कोई गद्दी खाली न मिली। हम उत्तर, पूर्व, दक्षिण में चूमते-फिरते पश्चिम में सौराष्ट्र में आये। यहाँ आकर देखा कि भगवान की गद्दी खाली है। बस, हम
उस गधी पर चढ़ बैठे।’ इतना मुश्किल हुए उन्होंने अपने चरणार्धिन्द उसके सामने पसार दिया। ब्राह्मण ने उनके पैर में सोलह चिह्न देखे। वह समझ गया कि वे चिह्न केवल भगवान के चरणों में ही होते हैं। वह प्राणाम करते हुए श्रीहरि के चरणों में गिर गया।

उसे श्रीहरि के चरणार्धिन्द में से तेज का समूह निकलता दिखाई दिया। अनन्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला तेज देखकर उसे समाधि लग गई, अक्षरधाम का दर्शन हुआ वहाँ दिव्य सिंहासन पर बिराजमान श्रीहरि, तथा उनकी सेवा में अनंत शिव तथा अवतार एवं अनन्तकोटि मुक्त दिखाई दिये।

महादेवजी ने उससे कहा, ‘भगवान स्वामिनारायण सभी अवतारों के अवतारी एवं सभी के कारणरूप पुरुषोत्तम नारायण हैं। तुम उनका आश्रित होकर उनका भजन करो, तुम्हें अक्षरधाम की प्राप्ति होगी।

कुछ क्षणों के बाद वह समाधि से जाग्रत हुआ, श्रीहरि के चरणों में गिरे पड़ा और बोला, ‘महाराज! मेरे अपराध क्षमा करें। मुझे आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं था, अब मुझे आप अपना आश्रित बनाए। मेरा कल्याण कीजिए।’

श्रीहरि ने उसे आशीर्वाद दिया। वर्तमान-नियम देकर उसको सतंगी बनाया।

**धरमपुर में पधरावनी**

श्रीहरि गढ़वा में थे, उनको अन्तर्वामीरूप से धरमपुर महारानी कुशलकुंवरबाई के संकल्प का पता चला। उन्होंने पत्र द्वारा सूचना भिजवाई कि हम कुछ ही दिनों में वर्तला होते हुए धरमपुर पठारे।

कुछ समय बाद वे गढ़वा से निकलकर सीजीवाड़ा, बुधेज और महेलाव होकर वर्तला पहुँचे। वहाँ उत्सव मनाकर कई दिनों की यात्रा के बाद धरमपुर पहुँचे। राजमाता के आनन्द की सीमा न रही। वे अपने कुंवर विजयदेव को लेकर गाँव के सिवान में श्रीहरि का स्वागत करने के लिए पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीहरि को स्वरूप जतिल वस्त्र तथा सोने के अलंकार अर्पण किए। हाथी पर सोनें की अंबारी में बिठाकर उन्होंने गाजे-बाजे के साथ श्रीहरि की शोभायात्रा निकाली। अपने राजमहल में निवास का प्रवेश
किया। तब उन्होंने कहा: ‘महाराज! यह सारा का सारा राज्य आपके चरणों में समर्पित है।’

श्रीहरि ने उसी पल कहा, ‘मैं राज्य नहीं चहाता, गधे का बोझ गधा ही उठाता है, हम राज्य चलाने धरती पर नहीं आये हैं। हमारी अंगुली के संकेत पर अन्ततःबिंदु ब्रह्मांड और उनके राज्य चलते है। हम तो केवल जीवों का मोक्ष करने के लिए, अक्षराधम से यहाँ आये हैं।’

उन्होंने महाराज की पधारनी वांछित में भी करवाई। वहाँ तीन दिन तक भिन्न भिन्न प्रकार की सेवा करके महाराज को बहुत प्रसन्न किया।

‘सबको पूर्ण अखण्ड और शुद्ध बनाऊँगा’

श्रीहरि एक बार वांछित ने सभा के समक्ष विराजमान थे। इतने में धर्मपुर के कुछ हरिभक्तों का संघ दर्शन के लिए आ पहुँचा। सभीने दंडवतु प्रणाम करके श्रीहरि का चरणस्पर्श किया। संघ के मुख्य हरिभक्त ने एक पोटली श्रीहरि के चरणों में रखी। उन्होंने पूर्णा, ‘यह क्या है?’

‘महाराज! धर्मपुर की राजमाता कुशलकुंवरबाई ने स्वयं अपने नखों से धान के छिलके निकालकर ये कमोद (जाति) के चावल भेजे हैं और आपको धर्मपुर पधारने के लिए निमंत्रण भी दिया है।’

श्रीहरि दूध के समान श्रेणी और फूलों के समान सुगंधित चावल लेकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सभाजनों से पूछा, ‘यह क्या है?’

‘महाराज! यह चोखा है।’ गुजराती में चावल को चोखा कहते हैं, उसका दूसरा अर्थ है शुद्ध। महाराज ने यह प्रसन्न तीन बार पूछा। हरिभक्तों ने तीनों बार वहीं उत्तर दिया, ‘महाराज यह चोखा है, यानी चावल है।’

मुक्तानन्द स्वामी ने पूछा, ‘महाराज! तीन बार एक ही प्रश्न पूछने का क्या रहस्य है?’

महाराज ने कहा, ‘जैसे ये चोखा दूध के समान श्रेणी है, अखण्ड है, उसी प्रकार में आप सभी को चोखा-अर्थात्त ध्वल (निर्दोष) और पूर्ण अखण्ड बनाना चाहता हूँ। चावल का प्रस्तुत दान ‘सम्पूर्ण’ है। ऐसे ही तुम लोगों को में सम्पूर्ण बनाऊँगा।’ सबको रहस्य समझ में आया।

कुशलकुंवरबाई ने यहाँ महाराज के स्वरूप का अनन्यभाव से दर्शन किया
बारह स्वरूपों में दर्शन

और उनका पूरा स्वरूप अपने अनस्तल में स्थिर किया। उनको आशीर्वाद देकर वे गढ़ड़ा की ओर चल पड़े।

बारह स्वरूपों में दर्शन

फूलदोल उत्सव मनाने के लिए श्रीहरि अहमदाबाद से वर्ताल पधारे। श्रीहरि ने सभी संतों और हरिभक्तों को उत्सव में उपस्थित रहने के लिए निमंत्रणपत्र भिजवाए। सभीको पता चल गया कि श्रीहरि सबके साथ होती खेलेंगे। यह लाभ लेने के लिए सभी वर्ताल पहुँचे।

खड़ा जिले के हरिभक्तों ने ज्ञानबाग में रंग के दो कुण्ड भरवा रखे थे, दस-दस फीट ऊँचे गुलाल के ढेर लगा दिये थे। हजारों पिचकारियों का एक ढेर लगा दिया गया था। इतनी सुन्दर पूर्व तैयारी देखकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए। श्रेष्ठ वस्त्र धारण करके वे अनेक संतों-हरिभक्तों के साथ ज्ञानबाग में पधारे। सर्वप्रथम रंग की पिचकारी भरकर उन्होंने रंग छिड़कना तथा गुलाल उड़ाकर संतों-हरिभक्तों को रंगना प्रारंभ किया। हरिभक्त भी महाराज को रंगने लगे। बहुत देर तक रंगद्रोड़ा चलती रही। अंत में श्रीहरि धार्मिक लाभ पर स्नान के लिए पधारे। भोजन तथा आराम के बाद वे पुनः ज्ञानबाग आ पहुँचे।

यहाँ पास-पास आम के दो भीमकाय पेड़ थे। सदृश निकुलानद स्वामी ने दोनों पेड़ों की डालियों को जोड़कर उस पर एक बल्ला बाँध कर झूला बनाया। सुन्दर नक्काशीवाला बारह छायाओं वाला यह झूला स्वामी ने अपने हाथों से बनाया था। उसमें पुंखूर, मोती और नंगा जड़कर उसकी शोभा और भी बढ़ा दी थी। श्रीहरि ने जरी के सुन्दर वस्त्र धारण किए थे। भक्तों ने कुशालकुंवरबाई द्वारा उपहार में दिये गये हीरे का मुकुट और स्वर्ण के आभूषण भी पहनाये। श्रीहरि झूले पर खड़े होकर दर्शन दे रहे थे। मुक्तानंद स्वामी रेशमी जरियान डोरी से झूला झूला रहे थे।

उस समय पर एक महान आध्यात्मिक का दर्शन हुआ। झूले के उन बारह छायाओं पर बारह स्वरूप धारण करके श्रीहरि दिखाई देते थे। झूले के चारों ओर खड़े हरिभक्तों को उनके बैसे ही दर्शन होते थे, जैसे श्रीहरि ठीक सामने खड़े होकर दर्शन दे रहे हैं। हरिभक्त कहाँ से भी, श्रीहरि को पुष्प
माला देते, महाराज अपनी छड़ी द्वारा ले लेते ! आशुकव फरमांसे ने इस लीला पर अनेक गीतों की रचना करके उनका गान किया। फूलदोलोत्सव के बाद हरिकेतन ने श्रीहरि का भावपूर्ण पूजन किया। उनके चरणों में भेंट रखकर उनकी आरती की। इस दिव्य लीला के दर्शन से सभी धन्यता का अनुभव करने लगे।

[ 15 ]

साधुओं के आचरण की रीति

श्रीहरि विचारण करते हुए गढ़ा पहुँचे। यहाँ उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को परमहंस को सम्बोधित करके एक पत्र लिखा, ‘हमारे संतों को पंचरत्मानों अर्थात् पांच निमंत्रणों का पालन करना चाहिए।’ ये निमंत्रण इस प्रकार हैं: निमंत्रण, निप्पाम, निरलौभ, निःस्थह और निःस्वाद। वे आठों प्रकार से स्त्री-प्रसंग का ल्याग करें। स्त्री का दर्शन हो अथवा उसकी आवाज तक सुनाई दे, तो ऐसे स्थान में निवास मत करना। दिन में गाँव के चबूतरे पर अथवा किसी सत्संगी गृहस्थ के घर निवास करना। द्रव्य और धातु मात्र का परिल्याग रखना। जरी के सुंदर तथा महीन वस्त्र, हीरा, माणक, मोती, मूंगा आदि गाहने तथा घन संपत्ति का ल्याग रखना। यदि कोई द्रव्य रखता हो तो उसे त्यागी संघ से निकाल देना चाहिए। मेरे आश्रित त्यागी भक्तों को लोकिक तथा सांसारिक बातें, गृहस्थों की जमीन जगीर सम्बन्धी बातें, अपने जमस्थान, जाति और सर्ग-सम्बन्धियों की बातें तथा कुसंग विषयक चर्चा कभी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसी चर्चा दूसरा भी कोई करता हो तो उसे भी रोकना चाहिए। एकदर्शी आदि ब्रत एवं उत्सव भक्तिभाव के साथ मनाते रहना चाहिए करना। छोटे परमहंस बड़े परमहंसों की मर्यादा रखें, विवेक से रहें, उठकर उनको आसन दें, उनको भोजन करा के, पानी चिलकर फिर स्वयं खाएँ तथा पीएँ। उनको जगाना हो तो ‘जय स्वामिनारायण’ कहकर जगाना चाहिए। चाहे कैसी भी स्थिति पैदा की न हो जाए, इन मर्यादाओं का उल्लंघन न हो, उसके लेन सत्तक रहना।’ इस प्रकार श्रीहरि ने अपने परमहंसों- साधुओं के आचरण की रीति का स्थापन किया।

इस प्रकार रन में आशाओं संख्या 1872 के प्रसंग दिये गये हैं।
बुरा स्वभाव छोड़ना

श्रीहरि छोटे से गाँव नागड़का में बिराजमान थे। वहाँ सुराखाचर की अक्षशाला में एक बच्चा था। वह उतना कोई था जो हर किसीको लात मारने का उसका स्वभाव था। हर कोई उसके समीप जाते हुए कतारते थे। जब श्रीहरि को इस बात का पता चला, तो उन्होंने एक संक्ल्प कर लिया। उनकी एक स्वभाविकता थी कि अपने संपर्क में आनेवाला चाहे कैसा भी बुरा हो, उसे मिटाकर रहना। उसकी आचरण शृद्धि करना।

श्रीहरि ने बच्छे की बुरी आदत छुड़ाने का निश्चय किया। वे दूसरे दिन प्रातःकाल से एक लंबा बौंस लेकर अक्षशाला में बच्छे के पीछे एक चौकी पर बैठ गये। उन्होंने बच्छे के एक पैर पर लाठी का स्पर्श करने का आरंभ किया। जैसे ही लाठी का स्पर्श हुआ, उसने तुरन्त उछलकर लात दे मारी। दो मिनट बाद फिर दूसरे पैर को लाठी छुआई, उसने आदत के अनुसार फिर उछलकर लात मारी। इस प्रकार महाराज हर पल-दो-पल उस बच्छे को लाठी का स्पर्श करते रहे और वह लात मारता रहा। अब वह दो पांच बार स्पर्श होने के बाद लात उछलता था।

दोपहर के बारह बज गये। सुरा खाचर और मूलजी ब्रह्मचारी श्रीहरि को भोजन के लिए बुलाने आये। उन्होंने सुरा खाचर से कहा, ‘इस बच्छे को लाठी छुआने का काम यदि आप जारी रखें, तो मैं भोजन के लिए जाऊँगा। अब दो-पांच बार लाठी छुआने पर वह एक बार लात उछलता है। पर पूरा सुधार अभी तक नहीं हुआ, परंतु आज ही इसकी बुरी आदत पूरी सुधारनी है।’ सुराखाचर श्रीहरि के आदेश का पालन करने के लिए तैयार हो गये।

श्रीहरि भोजन तथा कथा के बाद बापस लीटे और सुराखाचर से लाठी लेकर स्वयं अक्षशाला में बैठ गए। शाम होते-होते तो वह बच्छा लात उछाल-उछालकर थक गया। रात्रि तक उसकी वह बुरी आदत छूट गई। वह इतना शांत हो गया कि छोटे बच्चे आकर उसको छूने लगे पर उसने किसी को लात नहीं मारी। श्रीहरि हरिभक्तों से कहने लगे, ‘स्वभाव में ऐसी कोई बात हो तो वह छोड़ दें चाहिए। यदि आप नहीं छोड़ोगे तो भगवान इस प्रकार तुम्हारी आदत छुड़ाएँगे।’
लगन के अश्लील गीत बंद करवाये

एक बार श्रीहरि गढ़पुर में अपनी अक्षरकृति में बिराजमान थे। कहाँ
दूर से उनको विवाह के अवसर पर गये जाने वाले गीतों की पंक्तियाँ सुनाई
दी। जब शब्दों पर गौर किया तो उनको बहुत बुरा।

क्योंकि उन पंक्तियों के अर्थ अत्यंत अश्लील थे। श्रीहरि उदास होकर
किसी हरिभक्त के साथ सुखपुर गाँव की ओर चले दिये। वहाँ भी यही
हालत थी। विवाह के गीतों में गालियों के साथ अशोभनीय भाव भरे हुए,
थे। ऐसे गीत सुनकर वे फिर एक बार उदास हो गये।

हरिभक्तों ने श्रीहरि का विशुद्ध आचरण का आग्रह देखा था। उनकी
वाणी की पवित्रता देखी थी। उन्होंने श्रीहरि की मरजी देखकर मन ही मन
शुद्ध आचरण तथा पवित्र वाणी का ब्रत ले लिया। सभी ने मिलकर श्रीहरि
से क्षमाआवाचन की और उनके चरणों में दण्डवत्त प्रणाम करके प्रतिज्ञा
कि आज से हम आपको बचन देते हैं कि अब हमारी स्त्रियाँ ऐसे
अशोभनीय गीत कभी नहीं गाएँगी। हरिभक्तों ने स्त्रियों को श्रीहरि की
रूचि सुनाई तथा गंदे और अशोभनीय गीत गाने पर प्रतिवंथ लगवा दिया।
महाराज ने अपने कवि परमहंसों को आदेश दिया कि आप भगवान के
विवाह के गीतों की रचना करें ताकि सामाजिक प्रसंगों के अवसर पर
ऐसे ही पवित्र गीत गाए जाएं।

महाराज ने इसी गाँव से संवत् 1873 (सन् 1816) माघ शुक्ल पौर्णिमा
को प्रत्येक गाँव में अपने आश्रितों को एक पत्र द्वारा विवाह के मांगलिक
अवसर पर अश्लील गीत न गाने का आदेश दिया। तथा मुक्तानंद स्वामी,
प्रेमानंद स्वामी इत्यादि संतों द्वारा रचित रूक्मिणी के विवाह आदि भक्ति-
गीतों का गान करने की आज्ञा दी।

बच्चे को प्रसन्न किया

गढ़पुर में श्रीहरि सिंहासन पर बिराजमान थे। कथा का आरम्भ हो रहा
था। एक साल साल का बच्चा श्रीहरि के चरणस्पर्श के लिए आ रहा था।
इस प्रकरण में आपाती संवत् 1873 के प्रसंग दिये गये हैं।
चाहनक हरिभक्तों के पीछे से एक ध्यानकर सौंप निकला। किसी की नजर उस और नहीं थी। किन्तु महाराज ने दूर से उसे देख लिया। महाराज उस सौंप की ओर दौड़े। चौकर बच्चा उससे टकराकर गिर गया। हरिभक्तों ने उस दिशा में देखा तो चौकर खड़े रह गए। एक ध्यानकर सौंप को पकड़ने के लिए श्रीहरि स्वयं दौड़े रहे थे। श्रीहरि के पार्वत भगुजी और मूलजी ने अवय संभाल लिया था। दोनों सौंप को पकड़कर, मटके में डाल कर दूर फेंकने के लिए निकल गए थे।

श्रीहरि पुन: लौटकर मंच पर बिराजमान हुए। वे उस बच्चे को भूले नहीं थे। उन्होंने उस बच्चे को अपने पास बुलाया, पास में बिठाकर प्यार से प्रसाद में दो आम दिये। वह प्रसन्न होकर श्रीहरि को ढणजली प्रणाम करके पह चला गया।

[ 17 ]

वेदान्तचार्य के पराजय

श्रीहरि गहोपुर से संतों और हरिभक्तों के साथ विचरण करते हुए वर्ताल पहुंचे। यहाँ धनत्रयोदशी, कृष्णचतुर्दशी, दिवाली, अनन्त और प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव धूमधाम से संपन्न किया।

जब वे गहोपुर लौटकर पुन: वर्ताल पधारे, तब मुक्तानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी आदि विद्वान संत उनके साथ थे।

उन दिनों गुजरात में दक्षिण भारत से एक वेदान्तचार्य आये हुए थे। वे विद्वान तो थे, पर थे बड़े अंकार्थी। वे अधिकतर अहमदाबाद अथवा बड़ोदरा में ही रहते थे। विद्वान समझकर श्रीहरि ने उनको वर्ताल निर्माण किया। यहाँ नारायणगिरि के मठ में उनके निवास का अच्छा प्रबंध भी किया था। आवश्यकता से अधिक सीधा सामग्री भी भिजवाई थी। वर्ताल में श्रीहरि के तत्त्ववधान में उनके साथ शास्त्राध्य का आयोजन किया गया।

श्रीहरि ने उनको श्रुति-वेदान्त के बारह महावाक्यों का अर्थ करने के लिए प्रसन किये। उन्होंने अनेक प्रकार से उत्तर देने का प्रयत्न किया, परंतु श्रीहरि के तरक सुनकर उनके एक भी उत्तर टिक नहीं पाये। उनके सारे तरक कट गये। अन्त में महाराज ने स्वयं उन बारह महावाक्यों का अर्थ बताया।

इस प्रकरण में आपाती संवत् 1874 के प्रसंग दिये गये हैं।
बेदान्ताचार्य चकित रह गये। उनका गर्व चूर-चूर हो गया, फिर भी बिध्वान समझकर श्रीहरि ने उनको पुस्कृत करते हुए दो सौ रुपये दिये तथा वस्त्र आदि देकर उनको प्रसनन किय।

परन्तू बेदान्ताचार्य अपनी पराजय से भीतर ही भीतर दुःखी था। वह नड़ियाद जाकर श्रीहरि तथा सम्प्रदाय की निन्दा करते लगा। वह सुनकर श्रीहरि नित्यानंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी, महानुभावानंद स्वामी आदि संतों से कहने लगे, ‘आप जाकर उन बेदान्ताचार्य से पूछो तो सही कि आप हमारी निन्दा क्यों करते हैं? यदि आप दूसरी बार शास्त्राध्य करना चाहते हैं तो आप अवश्य आ सकते हैं।’

संतों के साथ उनकी फिर एक बार नड़ियाद भंट हो गई। नित्यानंद स्वामी ने बेदान्ताचार्य से पूछा, ‘पंडितजी, अपनी पराजय के कारण लजिज्द होकर आप अपनी मर्यादा स्वीकार क्यों नहीं करते? आप हमारे इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण की निन्दा क्यों करते हो? क्या यही आपका बाह्यधर्म है? पराजित होने पर भी आपका योग्य सम्मान किया गया था, श्रीहरि ने आप को दान से भी संतुष्ट किये। परन्तु मुझे लगता है कि आप बड़े कृतनिष्ठ हो। यदि हिम्मत हो तो हम आप के साथ काशी तक, जहाँ भी कही, शास्त्राध्य के लिए तैयार हैं।’ नित्यानंद स्वामी की प्रखर बिन्दुता को देखकर पंडित लजिज्द हुए और संतों से क्षमायाचना की।

अहमदाबाद में पुनः विशेष
संवत् 1874 (सन 1817) में अहमदाबाद और बीससंख्य में पेशवाई सत्ता समाप्त हुई। अंग्रेजों ने एन्ट्रुज डनलॉप को कलेक्टरपद पर नियुक्त किया। पदबराहण से पूर्व ही उस क्षेत्र का पूर्ण विवरण मि.डनलॉप को बता दिया गया था। अंग्रेज अधिकारियों को श्रीहरि के विलक्षण प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव था। क्योंकि जहाँ भी स्वामिनारायण सतसंग समुदाय उपस्थित था, वहाँ कानून और प्रबंधन व्यवस्थित चल रहा था। सत्संगियों का व्यवहार भी उन्हें अपने अनुकूल प्रतीत हुआ था। ऐसे गाँवों में चोर, लुटेरे आदि असामाजिक व अपराधी लोगों का उपद्रव भी नहीं के बराबर हो गया था। ऐसे अनेक कारणक्षत्र मि.डनलॉप के मन में स्वामिनारायण समुदाय का
एक विशिष्ट चित्र अंकित हो गया था।

एक दिन कलेक्टर ने अहमदाबाद के एक सल्सली को बुलाकर पूछा,
‘क्या यहाँ स्वामिनारायण का कोई आश्रम, मट अथवा मन्दिर है?
स्वामिनारायण इस शहर में क्यों नहीं आते?’ उस सल्सली ने पुरानी घटनाएँ सुनाई। उसे सूनकर मिःडनलॉप ने कहा: ‘मेरी ओर से जाकर आप
स्वामिनारायण से कहिए कि आप अब पुरानी बातों को भूलकर अहमदाबाद
पढाईए और धर्मप्रचार का काम कीजिए।

श्रीहरि को जब यह संदेश मिला तो वे संतों तथा सशक्त काठियों के
के साथ अहमदाबाद की ओर चल दिए। यहाँ आने से पूर्व जेतलपुर गाँव
की सीमा पर उन्होंने निवास किया। इस ओर एक दूसरी कलेक्टर डनलॉप के
कान भरने लगा कि स्वामिनारायण तो सशक्त काठी सैनिकों की सेना लेकर
अहमदाबाद पर आक्रमण करने आ रहे हैं। वे अहमदाबाद को जीत लेना
चाहते थें, मेरी बात पर यदि विश्वास न हो तो आप स्वयं जेतलपुर जाकर
dेख सकते हैं। परंतु कलेक्टर के मन पर इसका कोई असर नहीं हुआ।
क्योंकि वे श्रीहरि की लोकत्तर महिमा को ठीक दंग से जानते थे। फिर भी
वे च: अंगरक्षकों के साथ चंडोला तालाब पर महाराज को निर्माण करने के
लिए जा पहुँचे।

जेतलपुर में श्रीहरि ने आधारान्द स्वामी को बुलाकर एक प्रसंग का
रंगीन चित्र तैयार करने का आदेश दिया। उस चित्र में नायक के चेरे पर
किस प्रकार के भाव होने चाहिए यह भी श्रीहरि बताने लगे। तदनुसार स्वामी
ने सुंदर चित्र तैयार कर दिया। महाराज ने उससे कहा, ‘यह चित्र कल सुबह
साथ में ले लेना।’

दूसरे दिन संघ को लेकर श्रीहरि अहमदाबाद की ओर चल दिए।
चंडोला तलाब के पास डनलॉप महोदय, श्रीहरि की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर
से धूल का बवंडर और काठियों के कंधे पर चमकते भाले देखकर उनके
मन में कुछ शंका अवश्य हुई, परंतु महाराज का सौम्य मुखारविन्द एवं
भक्तों के निर्देशभावों को देखकर उनकी शंका जाती रही।

श्रीहरि उनके पास पहुँचे, पोट्टी से उतरकर उनसे मिले। डनलॉप ने भी
अपनी टोपी उतारकर महाराज का अभिवादन किया और अपनी शंका व्यक्त
करते हुए कहा, ‘मुझे कुछ दे तक ऐसा लग फंदे पैड़ों के कथनानुसार आप चढ़ाई के लिए सशस्त्र सैन्य लेकर आये हैं, लेकिन आप को देखकर मेरे संस्थायों संपूर्ण समाधान हो गया।’

श्रीहरि कहने लगे: ‘हम तो इस विद्व का कल्याण करने आये हैं। हमारा शस्त्र है, यह नाम-जप की माला। हमारी लड़ाई आपस में क्यों होगी? हमारा किसी के भी साथ जरूर क्यों होना चाहिए? ये सारे भक्त श्चित्रिय हैं, इसलिए वे अपने श्चित्रिय-धर्म के अनुसार शस्त्र रखते हैं। ताकि असुर लोग तनिक सम्पूर्ण रहते हैं, हमारे निरोध संतों को त्रास देते हुए, डरते हैं। हमारे ये संस्थायों शस्त्रों का दुरुपयोग कभी नहीं करते।’

श्रीहरि संघ के साथ कांकरिया तालाब के किनारे पड़ारे। यहाँ पर विशाल शामिलायण तैयार किया गया था। श्रीहरि तथा संघ का निवास यहाँ पर था। कोलकट डनलॉप श्रीहरि के साथ परामर्श के लिए बैठे। परतु श्रीहरि को लगातार देखते ही रह गए। आखिर उनसे रहा नहीं गया तो पूछने लगे, ‘महाराज, मैंने आपके दर्शन इससे पहले भी कहीं किये हैं, ऐसा लगता है।’ श्रीहरि ने तुरन्त आधारानंद स्वामी के उस चित्र को मंगवाया और डनलॉप के हाथों में धमा दिया।

चित्र था, एक जंगल में भयानक शेर डनलॉप पर आक्रमण कर रहा था, और महाराज स्वयं उस शेर के आक्रमण से डनलॉप की रक्षा कर रहे थे। चित्र देखते ही डनलॉप के मन में वह घटना-चित्र जैसे एकबार शिकार के उनकी अपनी गलती के कारण एक भयानक शेर ने उन पर आक्रमण कर दिया था, उस समय उनके मुख से प्रारूप पूरा पत्ता। श्रीहरि ने उसी पल दिव्य देख धारण करके उसकी रक्षा की थी। उस समय तो इस दिव्य विभूति को वह अधिकारी पहचान नहीं पाया था, पर आज श्रीहरि को देखते ही अपने जीवनदाता की ओर उसने तीन बार अपनी टोपी उतारकर वह झुक-झुककर प्रणाम करने लगा।

उसने कहा, ‘महाराज! अब आप को अहमदाबाद आने में किसी को सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने सिद्धांतों का अच्छी तरह प्रचार कर सकते हैं। हमारी ओर से आपको जो भी सहयोग चाहिए, अवश्य माँग लीजिए। आपको कोई भी कष्ट हो, तो इमें सूचित कीजिएगा। हम
आपको हर प्रकार अनुकूल होते का प्रयास करें। आप हमारी रक्षा करते रहिएगा और दया रखिएगा। हमारा कल्याण कीजिएगा।’ श्रीहरि ने उसको आशीर्वाद दिया। अब अहमदाबाद के हरिभक्तों को हमेशा के लिए सत्संग का सुख हो गया।

आपतं में अपमान

श्रीहरि वर्तमान में बिराजमान थे। आपतं के कुछ हरिभक्तों ने आकर महाराज से निबद्ध किया, ‘महाराज! कृपा करके आप आपतं पथराईए, हमारे घर पावन कीजिए।

महाराज ने कहा, ‘आपतं में देशी लोग बहुत हैं, इस समय रहने दीजिए, भविष्य में कभी आएगे।’

यह सुनकर हरिभक्त इतने दुख भी हुए कि उनकी आँखों में आँप आ गये। वे गद्दी केंद्र से बाराबार आपतं पथराने के लिए महाराज से विनती करते रहे। उनका भाव देखकर श्रीहरि ने स्वैरूपता दी।

संतों तथा शूरबीर काठि भक्तों का संघ लेकर श्रीहरि आपतं के लिए निकले। आपतं में हरिभक्तों ने ब्रह्म रसोई तैयार की थी, परन्तु श्रीहरि ने आपतं पहुँचने से पूर्व उन्हें संघ को अल्पाहार करवा दिया था। आपतं के हरिभक्तों ने गाँव की सीमा पर बड़े प्रेम से स्वागत किया। श्रीहरि ने संतो-हरिभक्तों के साथ आपतं में प्रवेश किया।

यह समाचार मिलते ही विरोधी मतपंथी लोगों का देश भड़क उठा। उनको लगा, जैसे उनकी दाल-रोटी उनके हाथ से लूटी जा रही है! इन विरोधी मतपंथियों ने कुछ लोगों को कहलाया और बीच बाजार में महाराज का अपमान करने के लिए इंकार किया।

महाराज ने पहले ही सबको आदेश दे दिया था कि क्षमा और धीरज से काम लेना। लाठियाँ, अपमान और तिरस्कार सहन करना। संघ के बीच बाजार में आते ही असुरुं ने गालियाँ मुनाई, परंतु महाराज के आदेशानुसार संघ संपूर्ण शान्त रहा। फिर तो गोबर, धूल, ठंडा और ढेर आदि उठाकर वे दुश्चन संघ पर फेंकने लगे। भगुजी, दादाखाचर और नाजा जोगिया का खून खील उठा। उनके हाथ तलबार पर पड़े, लेकिन श्रीहरि ने
उनकी ओर भी देख रहे थे। संकेत करके श्रीहरि ने उनको रोक दिया और आदेश दिया कि आप सबकुछ सहन करते रहो।

श्रीहरि और सारा संघ गाँव से निकलकर गुसाई की जगह में बर्गद के पेड़ के नीचे खड़ा रह गया। हरिभक्तों की रसोई वैसी ही पड़ी रही। महाराज बिना भोजन किए बाकरोल गाँव होते हुए वर्ताल आ पहुँचे।

संध्या के समय श्रीहरि ने सभी को इकट्ठा किया। सभा भरकर वे सभी को कहने लगे, ‘आप सब व्यर्थ ही कुम्हला गए। हमने कितनी बड़ी बहादुरी की!’

काठियों ने कहा, ‘क्या खाक बहादुरी की? ठेले खाये, गालियाँ खाईं आपने हम शूरवीरों को ईट के रोड़े खाने को विवश किया। यह समाचार यदि फैल गये तो हमें कोई सैन्य में भर्ती भी नहीं करेगा।’

श्रीहरि उनको कहने लगे, ‘हमने सहन किया, सामना नहीं किया है, उससे हमारी शोभा बढ़ी है। अन्यथा कितना बड़ा कांड हो जाता! लोग घायल होते, कोर्ट कस्तहरी होती। परन्तु सहन करने के कारण हम अवश्य विजेता हुए हैं।’
इस घटना के बाद आण्ड शहर के अग्रणियों ने सोचा, ‘ऐसे निर्मलतार संतों को एवं भगवान स्वामिनारायण को हमारे अज्ञात और द्वस्त नागरिकों ने कष्ट दिया, यह बहुत ही बुरी बात है। हमें उनसे स्कामायाचना करनी चाहिए।’ ऐसा सोचकर आण्ड के वरिष्ठ नेता वरताल आ पहुँचे। उन्होंने महाराज से बार-बार स्कामायाचना की तथा दुबारा ऐसा नहीं होने का विश्वास दिलाकर नागर के द्वार हमेशा के लिए खोल दिये।

[ 18 ]

सदगुरू बनाये

बड़ोदरा शहर उन दिनों छोटी काशी माना जाता था। वहाँ संस्कृत के कई विद्वान निवास करते थे। वरताल में श्रीहरि द्वारा पराजित हुआ वेदांताचार्य स्वामिनारायण सम्प्रदाय और श्रीहरि के प्रति अब भी दृष्ट रख रहा था। वह वैज्ञानिक्यों के बहकावे में आकर तथा भैषज्यवुद्धि के कारण ऐसा कहता फिरता था कि ‘स्वामिनारायण, भगवान नहीं हैं, मैं वरताल में उनसे मिला था, वे तो कल्पित देव हैं और भोला-भाली जनता को बहकाते हैं। मैं शास्त्र-प्रमाणों से सिद्ध कर सकता हूँ कि उनका सम्प्रदाय कोई सम्प्रदाय ही नहीं है।

बड़ोदरा के सत्संगियों ने जब यह सुना तो दूःख होकर उन्होंने श्रीहरि को पत्र लिखा, ‘हे महाराज! यह वेदांताचार्य आपका बहुत बड़ा दृष्ट है। वह आपको पाखण्डित बताता है, तो आप ऐसे किसी विद्वान साधु को भेजिए, जो शास्त्राध्य में उसे हरा सके। यहाँ राजा सयाजीराव बहुत सज्जन एवं न्यायी हैं, वे शास्त्राध्य सुनकर निर्णय देते में समर्थ हैं। किसी विद्वान साधु को भेजने की हमारी चिनती अवश्य स्वीकार कीजिएगा। पत्र पाकर महाराज मुकुराए और बोले, ‘मुक्तान्द स्वामी! आप पढ़े-लिखे और अहंशुद संत हो, आप बड़ोदरा जाएं और विद्वान साधु को पराजित करके लौटिए।’

मुक्तान्द स्वामी ने कहा, ‘महाराज! मुझे जैसे मामूली साधु से यह कार्य कैसे सिद्ध होगा? बड़े पेचीदा प्रश्नों के उत्तर में कैसे दे पाऊँगा?’

श्रीहरि ने कहा, ‘आप ऐसी चिन्ता मत कीजिए। मेरे स्मरण के साथ उत्तर देते रहना। अपने आप स्फुरण होती रहेगी। आपकी साधुता ही उनकी विद्वान के सामने पराजित रहेगी।’

इस प्रकरण में आपादी संबंध 1875 के प्रसंग दिये गये हैं।
मुक्तानंद स्वामी वड़ोदरा पहुँचे। चातुर्वास के दिन थे। शास्त्रार्थ के लिए, वे राजमहल की ओर जा रहे थे। उनको परेशान करने के लिए कुछ वैरागी रास्ते में खड़े थे। मुक्तानंद स्वामी तो बड़े भक्तिभाव से ‘क्षाला रमणुप करता कान, मारे घरे आयो ने’ पद गा रहे थे। रास्ते में कोई मिल जाता, तो उसको झुककर नमन करते। उनकी निर्मितिया, चेहरे पर फेल रही साधुता और झुककर प्रणाम करने की विनम्रता, आदि देखकर वैरागियों की विरोधी वृत्ति शान्त होने लगीं, वे परेशान करने की बात मानो भूल ही गये !

चर्चासभा का प्रारंभ हुआ। मुक्तानंद स्वामी ने वेदान्तार्थ को वर्ताल की चर्चा का स्पर्श किया ओर पुनःवे ही प्रसन पूछे जो महाराज ने पूछे थे। वेदान्तार्थ भय के कारण पते की भांति काँपने लगा। उसने कहा कि मैंं गलत बातें जोड़कर स्वामिनरायण के विरोध की बातें मैंं फैलाईं थीं। महाराज ने उसको उलझाना देकर अपने राज्य की सीमा से बाहर निकाल दिया। मुक्तानंद स्वामी की विजय हुई, अतः महाराज ने कई दिन तक उनका सत्संग किया। वडोदरा के हरिभक्तों ने जब मुक्तानंद स्वामी की जीत का समाचार भजनाया तो सारे संत और हरिभक्त प्रसन हुए। महाराज ने भी मुक्तानंद स्वामी की बहुत प्रशंसा की।

यह देख-सुनकर हरिनंदन तथा निर्विकल्पनंद नामक दो साधु मस्सर से व्यकुल हो गये। कहने लगे, ‘एक सभा जीती इसमें कौनसा शेर मारा है? यदि वहाँ हमें भेजना तो हम भी जीतकर लौट जाते। शेर बकरी को मार दे, उसमें कौन सा आदर्श ! यदि शेर शेर को मारे दे तो बात दूसरी है, उसीको जीत कहते हैं। वह पंडित तो चेहरा बकरी था, उसको हराना कोई बड़ा बात नहीं।’

यह सुनकर श्रीहरि अत्यंत उदास हो गये। उन्होंने कहा, ‘देखो, ये दोनों अभिमान की मूर्तियाँ हैं, ऐसे अभिमानी व्यक्ति सत्संग में रह ही नहीं सकते।’ महाराज मन ही मन में सोचते रहे, ‘ऐसे स्वच्छन्द साधु सबके साथ बसाबर भाव रखते हुए बड़ों का आदर नहीं करते। उन पर किसी का अंकुश ही नहीं रहा! अब मैं ऐसे के साथ नहीं रहूँगा। मैं यहाँ से चला जाऊँगा, कहीं दूर एकान्त जंगल में जाकर रहूँगा।’

महाराज ने उदासी ग्रहण की, उनका चेहरा निर्जीव हो गया। उन्होंने
खाना-पीना छोड़ दिया। वे आठो पहर एकान्त में एक कोटरी में रहने लगे।
यह देखकर मोटिबा ने कहा, ‘महाराज! आप उदास क्यों रहते हैं? हमसे कोई भूल हुई हो, आज्ञा भंग हुई हो, तो आप हमें प्रायश्चित के लिए कहें, लेकिन आप खाना-पीना आरम्भ कीजिए। प्राकृतिक रूप से।’

श्रीहरि ने कहा, ‘मुझे यहाँ रहना ही नहीं है, मैं जंगल में जाकर रहना चाहता हूँ।’ ब्रह्मांड स्वामी, सुपारिक आदि ने महाराज की उदासी दूर करने भगीरथ प्रयास किया, परन्तु हमेशा आनंदित रहनेवाले श्रीहरि आज प्राकृतिक रूप से नहीं हो पाए। उन्होंने ने कहा, ‘वनवास की बात के सिवा में तुम लोगों की कोई बात सुनना नहीं चाहता।’

यह सुनकर सबसे कहने लगे, ‘महाराज! न आपको हम बन में जाने देंगे और न ही आपकी इस इच्छा को बदलवा देंगे। यहाँ से आपके चले जाने से हमारा क्या होगा? हम ऐसे ही रहना चाहते हैं, जैसी आपकी मरजी हो। परन्तु आप हमें छोड़ने की बात मत कीजिए। आप यहाँ उत्सव करके हर प्रांत के हरिभक्तों को यहाँ बुलाए। उनके सामने आप अपना वनवास का प्रस्ताव रखिए। सारा सत्संग यदि अनुमति देता है, तो आप अवश्य जा सकते हैं।’

महाराज ने उनकी बिनती स्वीकार की और पत्र द्वारा उत्तर गुजरात के आदर्श गाँव में सभी संतों और हरिभक्तों को आने का निर्देशन दिया। वहाँ अनन्य के दूसरे दिन सभा में श्रीहरि ने अपना प्रस्ताव रखा: ‘सुनिए अब हम सतसंग समुदाय में रहना नहीं चाहते। हमारा मन कहीं लगता नहीं है, सब कुछ छोड़कर मैंने जंगल में जाने का निर्णय ले लिया है।’ यह प्रस्ताव सुनते ही कई संतों और हरिभक्तों को मूर्छा आ गई। वे भूमि पर गिरे पड़े। स्त्रियाँ और पुरुषों की आँखें से आँसुओं की धाराएं बहने लगीं।

वरिष्ठ संतों ने कहा, ‘महाराज! कलेजा दहलने लगा है। ऐसी बातें मत कीजिए, हमारी कोई भूल हो तो हम सभी आपके आदेश के अनुसार प्रायश्चित करने को तैयार हैं।’ आप जैसा कहनेगे, वैसा व्यवहार करेंगे।

आपके प्राप्त करने के लिए ही तो इन साधुओं ने संसार छोड़ा है, स्त्रियों ने आपकी भक्ति के लिए ही तो लोक-चाल कुल-मर्यादा छोड़ी है। ऐसी स्थिति में आप चले जाएं तो इन सबका आश्रय स्थान कौन? मूँह में तिनका लेकर हम आप से क्षमा मांगते हैं, हमारा कोई भी अपराध हो तो
आप हमें क्षमा कर दीजिए और हमारे साथ ही रहिए। फिर भी यदि आप
चले ही जाएँगे तो हम सब शरीर छोड़ देंगे और हिरन बनकर आपके
पीछे पीछे बन में घूमेंगे।

महाराज का हृदय दया से पसीजने लगा। उन्होंने कहा, ‘सत्संग का
बहुत विस्तार हो गया है, साधुओं और हरिभक्तों की संख्या भी बढ़ गई है।
अब कुछ उत्तरदायित्व आप को संभालना चाहिए। सत्संग की चित्ता
करने चाहिए। यदि कोई छोटे-बड़े को मर्यादा नहीं रखता और इंतजा करता
है तथा समानता की आड़ में बड़ा का अपमान भी करता है, तो यह ठीक
नहीं है। ऐसा वातावरण देखकर मैं ने यहाँ से जाने का विचार किया था,
यदि कोई सत्संग का उत्तरदायित्व निभाने को तैयार हो, तथा सबके साथ
उचित व्यवहार करा सके, किसी को कड़े-चट्टे बचन कहकर भी सत्संग की
प्रथाएँ निभा सके, ऐसे संतों को हम सत्संग के शीर्षस्थ स्थान पर रखेंगे
उनके आदेशों का पालन करने की प्रतिज्ञा करेंगे, तभी हम यहाँ रहने की
सोचेंगे, अन्यथा चले जाएँगे।’

संतों-भक्तों ने कहा, ‘महाराज! आप जिनको कहेंगे, उनकी आज्ञा में
हम अवशय रहेंगे, वे जो भी कहेंगे, हम उनकी आज्ञा का पालन करेंगे।
लेकिन आप कृपया हमें छोड़कर चले जाने की बात न करें।’

श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी और
प्रस्थेतेनन्द स्वामी ही चार संतों को सद्गुरु पद पर नियुक्त किया। तथा
सभी को इन चार सद्गुरुओं की आज्ञा में रहने का आदेश दिया अब भक्तों
के मनमें आशा की किरण जगमगाई। सबके हृदय प्रसन्नता से नाचने लगे।
महाराज प्रसन्न हुए। उन्होंने उदासी छोड़ दी और पूर्ववत् सबको सुख देने
लगे। आदर्श गाँव में महाराज ने संतों के लिए काष्ठ के भोजन पात्र और
जलपान के लिए तुम्ही का निर्माण करवाया। संतों के लिए पत्तर और तुंबी
की प्रथा श्रीहरि ने इस गाँव से प्रारम्भ की।

यहाँ से श्रीहरि बड़नगर, विसनगर, अहमदाबाद, अश्लाली होते हुए
जेतलपुर पथरे। उत्त कार्य सद्गुरुओं के अतिरिक्त दूसरे आठ बड़े संतों को
यहाँ पुनःसद्गुरुपद दिया। संतों की मण्डलियाँ बनाकर बारह सद्गुरुओं के
अधिकार के नीचे मण्डलियों को बाँट दिया। सद्गुरुओं का उत्तरदायित्व बढ़
गया। हरिभक्तों की देखभाल तथा कथा-चार्ट करके उनको प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देने की सेवा सदृशियों ने उठा ली। परिणाम यह हुआ कि सत्संग समाज व्यवस्थित हुआ और सत्संग में नियमन आने लगा।

साधुधर्म समझाया

चातुर्मास में हजारों हरिभक्त श्रीहरि के दर्शन करने के लिए गढ़दा आते थे। एक दिन हरिभक्तों का संघ सभा-समाप्ति के बाद लक्ष्मीवाड़ी से दादाखाँचर के दरबार की ओर जा रहा था। रात्रि में एक जैन साधु अपने मन्दिर के बाहर बैठकर संध की ओर देख रहे थे।

संघ में चलते हुए एक बच्चे ने भूल से इधर-उधर देखे बिना, उसी ओर थूक दिया। थूक के कुछ छोटे जैन साधु के शरीर पर पड़े। उस साधु ने भरी बाजार में हो-हल्ला मचा दिया और कहने लगा, ‘स्वामिनारायण के शिष्य मूढ़ पर थूके और मेरा अपमान किया। हम इसे बर्दाश्त नहीं करेंगे।’ यह सुनकर उसके कुछ अनुयायी भी इकड़े होने लगे। कुछ अग्रणी जैन व्यापारियों ने तो पूरा बाजार बंद करने का फर्मान जारी कर दिया।

सारे गाँव में यहीं चर्चा होने लगी। जब श्रीहरि के पास यह बात पहुँची तो उन्होंने तुरंत घटना की गहराई में जाकर जाँच की। जब इस छोटे बच्चे की गलती की बात सुनी, तो उसे पास बुलाकर प्रेम पूर्वक समझाने लगे कि हमें कहाँ नहीं थूकना चाहिए तथा किस स्थान पर जाकर थूकना चाहिए। लड़के के पिता ने लड़के की ओर से श्रीहरि तथा संघ की समायाचना की। परंतु तब तक तो पूरे शहर में हल्ला मच गया था।

श्रीहरि ने सोचा कि इस का उपाय तुरंत होना चाहिए। वे स्वयं उस जैन साधु के पास जा पहुँचे और बच्चे की ओर से समायाचना करते हुए कहा, ‘मैं उस बच्चे की ओर से आपके पास क्षमा का निबेदन लेकर आया हूँ। आप इसकी गलती को भूलकर बाजार खुलवा दीजिए।’

जैन साधु के मन का समाधान हुआ, वह अपना साधुधर्म भी समझा। इसने ही नहीं, उसने अपने अनुयायियों को भी समझाया। तुरंत बाजार खुल गया। एक बच्चे की गलती के लिए सामान्य साधु की क्षमायाचना करने में श्रीहरि की किंतनी चिंतनप्रता का दर्शन होता है।
शिशुवर्त्त्व प्रभु

एकबार श्रीहरि गढ्घर में मुंडन करवा रहे थे। एक किसान का दस वर्षीय लड़का नाई से कहने लगा कि महाराज के मुंडन के बाद उनके कुछ बाल प्रसादी के रूप में मुझे अवश्य देना। नाई ने इस बात पर संविष्टि जताई।

श्रीहरि का मुंडन शुरू हुआ। लड़का एक कोने में बैठकर बड़े भाव से श्रीहरि का दर्शन करने लगा। मुंडन समाप्त होते ही नाई अपना सामान समेटकर श्रीहरि के प्रसाद का बाल अपनी खैली में डालकर घर चला गया।

उसके मन से लड़के की बात ही निकल गई थी। लड़का तो बाल न मिलने से सुख-सुख कर रोने लगा। उसके मन में बहुत बुरा लगा था। जब तक श्रीहरि स्नान करके तैयार न हुए तब तक बच्चा रोता रहा। अचानक श्रीहरि ने उसे रोते हुए सुना तो उसके पास जाकर मस्तक पर हाथ फेरकर धीरे से पूछे-‘बेटा, क्यों रो रहा है?’

लड़के ने रोते हुए सारी बात बता दी। श्रीहरि मुखुराकर कहने लगे, ‘अरे, इतनी सी बात पर रो रहा है? इसमें रोने की क्रिया है? लो, में तुम्हें अपनी छोटी से बाल काट कर देता हूँ।’ इतना कहकर उन्होंने सेवक से छोटी-सी केची मंगवाई और कुछ बाल काट कर उसे दे दिये। लड़का प्रसन्न होकर चरणस्पर्श करके घर की ओर चला गया।

[ 19 ]

सहजानन्दी होना चाहिए

श्रीहरि के आदेशानुसार उनके साधु-समुदाय को बारह सदगुरु संभाल रहे थे। सभी संत अपने मंडल के मुख्य सदगुरु की छत्रछाया में रहकर श्रीहरि को प्रसन्न करने की आराधना कर रहे थे। परंतु इस व्यवस्था का एक दूसरा असर पैदा होने लगा। साधु परस्पर अपने-अपने सदगुरु का नाम जोड़कर कहने लगे कि मे मुक्तानन्दी हूँ, यह ब्रह्मानन्दी है इत्यादि।

श्रीहरि ने सोचा कि इस तरह तो संतों में एकता टूटने की संभावना बढ़ जाएगी। उन्होंने इस अनुचित रीति को मुधार्य के लिए एक उपाय खोज निकाला। एक दिन उन्होंने एक उत्सव सभा के बाद एक-एक साधु को इस प्रकरण में आपाती संवत 1876 के प्रसंग दिये गये हैं।
श्रीहरि के प्राकृत्व के छ: हेतु

मिलकर पृष्ठांश प्रारंभ किया, ‘आप किसके शिष्य?’ सभी अपने-अपने सदृशुओं के नाम बता रहे थे, ‘मैं ब्रह्मान्दी, मैं मुक्तान्दी, मैं नित्यान्दी।’ यह सब सुनकर श्रीहरि ने सबको टोक दिया, ‘अच्छा! तो यहाँ कोई मुक्तान्दी है, तो कोई ब्रह्मान्दी है, परन्तु कोई सहजान्दी भी है या नहीं? सारे सदृशु शिष्यों के समुदाय के साथ रहते हैं। एक केवल राख में जो बिना शिष्य का रह गया!’

श्रीहरि की बक्कवाणी सुनकर साधुओं की आँखें खुल गई। वे एक साथ बोल उठे, ‘हे महाराज! हम तो आप ही के शिष्य हैं, आपकी आज्ञा के अनुसार हमें सदृशुओं के साथ रहकर सेवा कर रहे हैं। अन्यथा हम सब तो सहजान्दी ही हैं।’

उसके पश्चात् साधुओं की भिन्न भिन्न मण्डलों में बदली करने की प्रश्न आरम्भ हुई। सभी सदृशुओं के साधुओं को बदल दिये।

[ 20 ]

श्रीहरि के प्राकृत्व के छ: हेतु

श्रीहरि सोराट्ट के छोटे-से कारियाणी गाँव में विराजमान थे। यहाँ बड़ोंदरा से अप्सरागयामी स्वामी गोपालानन्दजी श्रीहरि के दर्शन करने के लिए पढ़े थे। उनका सकार करके श्रीहरि उनको अपने निवास-अक्षर कुटीर में ले गये। उनको अपने पास बैठाया। वहाँ उपस्थित संतों और हरिभक्तों को बाहर जाने का आदेश दिया। इन संतों में निक्षुलानंद स्वामी भी उपस्थित थे। श्रीहरि ने कहा, ‘आप भी बाहर जाइए। दरवाजे के पीछे छोकड़ के पत्थर गाड़ने का काम कीजिए।’ इतना कहकर अक्षर कुटीर का दरवाजा स्वयं बंद कर दिया। निक्षुलानंद स्वामी को जिज्ञासा हुई कि ऐसी कौन-सी बात है कि श्रीहरि एकांत में गोपालानन्दजी से बताने जा रहे हैं। उन्होंने द्वार की दरार में झाककर देखा तो श्रीहरि अपने इस सिद्ध संत को पृथ्वी पर अपने प्राकृत्व के छ: हेतु समझा रहे थे, जो इस प्रकार थे:

(1) अपनी स्वच्छता उपासना तथा स्वच्छता ज्ञान का संसार में प्रचार करना।

(2) भूपूर्वी अवतारों के भक्तों को अपनी उपासना और अपने स्वरूप का
   इस प्रकारण में आपाती संवत् 1877 के प्रसंग दिये गये हैं।
(3) भक्तिदेवी और धर्मदेव को असुरों के तास से मुक्ति दिलाकर अपनी 
मूर्ति का सुख देना।

(4) बहुत समय से लुत्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और माहात्म्ययुक्त भक्ति सहित 
एकान्तिक धर्म की प्रवृति करवाना।

(5) अनन्त काल से साधना करने वाले तपस्वीगण एवं योगियों को दर्शन 
देकर तप और भक्ति का फल देना तथा भगवान के प्रति प्रीति 
रखनेवाले मुमुशुओं के मनोरथ पूर्ण करना।

(6) इस पृथ्वी पर एकान्तिक धर्म के धारक संतों, उपासना के लिए 
शिखरबद्ध भव्य मन्दिरों तथा हमारे लीला-चरित्र के ग्रंथ का निर्माण 
करना स्वधर्म-ज्ञान से सुन्दर शास्त्रों का निर्माण करना और परात्पर 
अक्षराधाम की प्राप्ति करवाने के लिए परम एकान्तिक संतों के द्वारा 
आत्मनिर्दलित कल्याण का मोक्षार्थ इस ब्रह्माण्ड में हमेशा के लिए स्थिर 
रखना।

श्रीहरि ने दीपावली के उत्सव तत्कालिनों के लिए निवास किया।
दिवाली की रात को वे सभा में उपस्थित हुए। भक्तों ने उनकी चारों ओर 
दीपमाला जगमगाई थी। उसी समय दीवालं थे एक भाविक महिला 
हरिभक्त प्रेमावर्धी श्रीहरि के लिए विभिन्न प्रकार के मूल्यवान वस्त्र 
अलंकार तथा छत्र, चामर, एवं पतंगों लेकर अर्पण करने के लिए आ 
पहुँची। उनका भक्तिभाव देखकर श्रीहरि ने स्वयं उसके सामने जाकर 
सभी पदार्थ ग्रहण किए परंतु उनका तो सहज स्वभाव ही था कि वे अच्छे 
पदार्थों का परियोजन नहीं करते थे। उन्होंने उसी पल उपयोग करके सभी 
मूल्यवान पदार्थ पंडित दीनानाथ भट्टजी को कृपणप्रजन कर दिए। उस 
समय ईर्ष्यां लेनेवालों के लिए श्रीहरि ने निर्माणीभाव से रहकर ईर्ष्यां और 
मतस मिटाकर भक्ति करने का उपदेश दिया।

लोया में शकोख्याव

श्रीहरि कार्तिक मास में नागड़का तथा लोया पढ़ाए। यहाँ वे प्रायः संघा 
पटेल अथवा सुराखाचर के दरबार भुवन में निवास करते थे। सुरा भक्त के
दरबारभूमि के चौक में श्रीहरि संतों के साथ नीमवृक्ष के नीचे उपदेश देते रहते थे। यहाँ उन्होंने दो महीने तक निवास किया। उस समय उन्होंने गाँव-गाँव से संतों को यहाँ बुला लिया था। एक दिन उन्होंने शाकोत्सव मनाने का निश्चय किया। नीम के पेड़ के नीचे एक ओर पाँच-बाँझ चूल्हे खड़वाये थे। महाराज स्वयं बेठकर बड़े-बड़े पाँच बस्तनों में पचास मन बैठना का साग बाहर मन धी में छोँककर बनाते थे और स्वयं ही सबको परोसते थे। इसी गाँव में उन्होंने वसन्तपंचमी का उत्सव मनाया, रंग खेले और अन्तिम बार लोग मन बैठना का साग बनाकर विशाल पैमाने पर शाकोत्सव किया।

वसन्तपंचमी के उत्सव में रंग से खेलते हुए उन्होंने संतों को अत्यंत प्रसन्न किया। संध्या के समय गाँव में कुछ कठपुतली के खेल दिखानेवाले आये थे। उनके खेल देखकर श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए और उन लोगों को कहने लगे, ‘आप लोगों ने कठपुतली के दूसरे खेल तो बताए परतु में रक्षमाणि विवाह का प्रसंग नहीं दिखाया।’ मण्डलों के नायक ने यह सुनकर पुतलियों की डोरी अपनी अंगुलियों पर बाँध ली। उसने कठपुतलियों को नचाने का प्रयास किया, परन्तु आज तो पुतलियाँ हिली तक नहीं। नायक ने श्रीहरि का चरण स्पर्श करके कहा, ‘महाराज! आप तो भयानक हैं, ये पुतलियाँ तो क्या, हमारे सबके नाड़ी-प्राण भी आपके हाथ में हैं। संसार के सारे प्राणी आपके इसारे से नाम नवेलवाली पुतलियाँ हैं। कोई अपराध हुआ हो तो क्या करें?’ श्रीहरि ने तुरंत उसकी ओर दृष्टि की, उस नायक की अंगुलियाँ तुरंत हिलने लगीं। महाराज पुतलियों के खेल देखकर प्रसन्न हुए। इसी घटना के आधार पर ब्रह्मानन्द स्वामी ने ‘नेण कटारि नेण कटारि सलूणा स्यामनी रे’ इस पद को रचना की।

माह मास की पूर्णिमा को चंद्रग्रहण था। ग्रहण-मुक्ति के बाद महाराज संघ को लेकर भद्रा नदी में स्नान के लिए पढ़ाई। बाद में नदी के किनारे पर सभा में बिराजमान हुए। एक अमीर परंतु अहंकारी स्त्री ने श्रीहरि को एक अँगरेखा अप्सर करके आप्रव किया कि इसे अभी पहनो।

उस स्त्री का हाताग्रह देखकर श्रीहरि ने पूछा, ‘इसे कब तक पहनूँ?’
‘जब तक फटे नहीं, तब तक इसे पहनते रहना।’
श्रीहरि ने कहा, ‘ठीक है, लाइए।’ उन्होंने जैसे ही अँगरखा पहना और पूरी शक्ति से अंग मरोड़ा कि अँगरखा तनकर फट गया! स्त्री की समझ में आ गया कि अंहकार मिश्रित सेवा कभी श्रीहरि के हदय तक पहुँचती नहीं हैं।

भाइयों का मिलन

श्रीहरि के पूर्वाश्रम के छोटे भाई इच्छारामजी अयोध्या से गुजरात पढ़ाई थी। संतों ने जब उनके आने की सूचना दी थी तब श्रीहरि संतों और भक्तों को भोजन परोस रहे थे। इच्छारामजी का नाम सुनकर श्रीहरि एक शब्द भी नहीं बोले। अपने सेवा कार्य से निपटकर वे तुरंत संता परटल के पर अपने निवासस्थान पर चले गये। मुक्तानन्द स्वामी, इच्छारामजी को लेकर श्रीहरि के पास पहुँचे। श्रीहरि के दर्शन करते ही वे अपनी सुधबुध खो बैठे। उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू झर रहे थे। ‘भेया! भेया!’ कहकर वे दौड़ते हुए श्रीहरि के चरणारविन्द में गिर गये। ‘घनश्याम भेया! भेया! भेया!’ की पुकार लगातार सुनाई देने लगी।

श्रीहरि ने अपने चरण छबड़वाकर धीरे से पूछा, ‘कौन हो आप?’ परन्तु इच्छारामभाई प्रेममन्न होकर कहे जा रहे थे कि ‘भेया घनश्याम! घनश्याम! आप हमें छोड़कर क्यों चले गए थे?’ मुक्तानन्द स्वामी, तथा नित्यानन्द स्वामी इच्छारामभाई को स्वस्थ करने समाचार पूछने लगे। दो भाइयों के इस मंगलमिलन को देखकर उनकी आँखें भी हर्षपुष्ट से भी गई। कुछ देर तक किसी को कुछ भी बोलने की सूचना नहीं थी। अंत में मुक्तानन्द स्वामी ने कहा, ‘महाराज! आपके छोटे भाई इच्छारामजी आये हैं।’ परन्तु वे कुछ भी नहीं बोले। मुक्तानन्द स्वामी और नित्यानन्द स्वामी ने श्रीहरि का हाथ पकड़ कर आपस पर बैठाया और भाई को उनके पास ले आये।

नित्यानन्द स्वामी ने कहा, ‘महाराज! आप तो भगवान हैं, सब के प्रेम को दुकाराकर अनासक्त भाव से गृहत्याग करके निकल जाना, आपके लिए तो सहज है परंतु ये तो आपके प्रेम के पुजारी हैं।’ इनका इतने सालों के विरह का अन्त हुआ, अतः इनका हदय भर आता है। आप अपना मौन बोलकर इनके साथ तनिक प्रेम से बोलो तो सही! क्या आप भी हमारी तरह ल्यागाश्रमी हैं?’
पंचाला में वीमारी

तब श्रीहरि गंभीर स्वर में कुछ पुरानी बातें याद करने लगे।

संतों के बहुत आग्रह करने पर वे इच्छामानी से मिले। वे तो बड़े प्रभाव से श्रीहरि के गले लिपट गये। कितना अद्भुत था, वह मिलन!

इच्छामानी ने बताया कि वे मायाजितानद स्वामी के साथ छपिया से यहाँ कैसे पहुँचे।

पाँच दिन के बाद श्रीहरि के पूर्वश्रम के बड़े भाई रामप्रतापजी भी आ गए। सुरा खाचर आदि भक्तमंडल ने संतों के साथ गाँव की सीमा तक जाकर गाजे-बाजे के साथ रामप्रतापभाई का स्वागत किया। रामप्रतापजी तो श्रीहरि का अन्य प्रभाव देखकर सोचते ही रह गए कि जिसे हमने घर में साथ रहकर भी नहीं पहचाना, उनको इसी दूरी पर गुजरात के हरिभक्तों ने पहचान लिया।

लोग में श्रीहरि के पास पहुँचकर उन्होंने महाराज के दर्शन किये। वर्षों की विरह बेदना और अंतर का असीम प्रेम आँसुओं के रूप में पिघल कर बह रहा था। वे अपनी भूजाओं के अलैंग से महाराज को छोड़ नहीं पा रहे थे। वे बोले, ‘वनश्याम! सबके प्रेम को ठोकर मारकर तुम क्यों चले गये? कभी किसी को याद भी नहीं किया?’ श्रीहरि शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे।

इस सुंदर घटना को देखकर संतों-भक्तों के रोम, रोम प्रफुल्लित हो रहा था।

पंचाला में वीमारी

माध मास के उत्तरते ही श्रीहरि गढ़पूर पधारे। वहाँ कुछ दिन रहकर फूलदोल के उत्सव के लिए वे पंचाला पधारे। वहाँ पूर्णिमा के दिन श्रीहरि फन्ड़ह हाथ के भरे बाली बाँध बाला जामा पहनकर गरबी में घूमे और जितने संत थे, उतने स्वरूप धारण करके आधी रात तक रास खेलते रहे।

पंचाला में झीलाई के दरबार में भक्तों को अनेक दिव्य लीलाओं से आनंद लेकर वे संघ के साथ गोपी तालाब के किनारे पर पहुँचे। स्नान के बाद उन्होंने देखा तो वहाँ की मिठी चन्दन जैसी थी। श्रीहरि ने उस मिठी से कुछ गोलियाँ बनवाई और कहा, ‘संतों, लीजिए वे गोटियाँ। आज
से इसे चंदन समझकर अपने भाल प्रदेश में उद्धेश्य पुर्ण तिलक करने का प्रारंभ करें।’ परंतु कुछ भक्तहद्यी संत तो इसे महाराज की प्रसादी समझकर खा गए।

परंतु कुछ संत दूसरे दिन अलग अलग प्रकार के तिलक लगाकर सभा में उपस्थित रहे। उन्हें देखकर श्रीहरि मुख्यानें लगे। उन्होंने अचानक गुणातीतानंद स्वामी को अपने पास बुलाया और उनके मस्तक पर स्वयं उद्धेश्य पुर्ण तिलक करके श्रीहरि ने कहा, ‘ये हैं हमारे तिलक’ इतना कहकर कहने लगे कि, ‘मेरे समान कोई भगवान नहीं है और इनके समान कोई संत नहीं है।’

उस समय मांगोतल से आण्डजी संघेडिया (खराडी) संतों के लिए बड़ी मात्रा में काष्ठ के भोजनपात्र और तुम्बे लेकर वहाँ आ पहुँचे। जिन संतों के पास ऐसे पात्र नहीं थे अथवा जिनके पात्र दूर चुके थे उनको पात्र तथा तुम्बे दिए गए। आज से श्रीहरि ने सभी संतों को आदेश दिया कि ‘अब वे भोजन करने के लिए काष्ठ के पात्र की ही उपयोग करें तथा तुम्बे में जल भरकर भोजन के पात्र में एक अंजली डालकर भोजन का आरंभ करें।’

फालुगुन शुक्ला एकादशी का जागरण करके श्रीहरि ने सभी को अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराकर बिदा दी।

चैत्र मास का प्रारंभ हुआ। श्रीहरि एक दिन संतों तथा भक्तों से कहने लगे, ‘आप लोग हमारे परिवार के सदस्यों को हमारे पास कैसे ले आये? परिवार का सम्बंध छोड़कर जो ल्यागी हुआ है, उसको परिवार का मोह नहीं रखना चाहिए। अब तो हमारी देश अधिक दिनों तक ठिकने वाली नहीं है।’ इतना कहकर उन्होंने भारी उदासीनता ग्रहण कर ली। वे बीमार हो गए। उन्होंने किसी से मिलना-जुलना बंद कर दिया।

सूराखाचर यह समाचार जानकर शीघ्रतापूर्वक श्रीहरि के पास पहुँचे। उस समय वे खोखरा तालाब के किनारे पर मुड़न करवा रहे थे। महाराज के दर्शन के लिए वे उस ओर आने लगे। उन्हें अपनी ओर आते देखकर श्रीहरि ने अपने पास न आने के लिए संकेत किया। सूराखाचर श्रीहरि का शरीर तथा बीमारी देखकर बच्चों की तरह रोने लगे। उनकी प्रेम भक्ति देखकर श्रीहरि द्रवित हो गये। उनकी आँखों में से भी अशृधारा बहने लगी।
अपना वृत्तांत

जिस जगह महाराज के प्रेमाश्रु गिरे, उस स्थान पर आज एक जलाशय है, जिसे ‘बिन्दु दरोवर’ कहा जाता है।

श्रीहरि के स्वास्थ्य के लिए कई उपचार किये गये, पर कुछ परिणाम नहीं निकला। तब मुक्तानंद स्वामी प्रार्थना करने लगे कि ‘हे महाराज! यदि आप ऐसा सोच रहे हैं कि मुझे इस नधर श्रीर को छोड़कर अपने अक्षरधाम में चले जाना है, तो हमारी विनती यह है कि मामूली बाबा वैरागी भी छोटा-बड़ा मठ या मंदिर का निर्माण करके अपनी निशानी छोड़ जाते हैं। जबकि आप पुष्पोत्सव नारायण संसार में पढ़ाेर और अपनी विभूति रूपी निशानी न छोड़ गए तो आपकी मुज्लुलोक की यात्रा निष्कांत नहीं होगी क्या?’

इस परामर्श के बाद श्रीहरि ने भव्य मंदिरों के निर्माण एवं समग्रदाय की स्थापना करने का संकल्प किया।

उन्होंने श्रीणाभाई से कहा, ‘आप थाल तैयार करवाएँ तो हम स्वस्थ हो जाएँगे।’ श्रीणाभाई ने थाल करवाया। श्रीहरि ने भोजन करते ही बीमारी का ल्याग किया। स्वस्थ होकर वे गढ़डा के लिए निकल पड़े।

[ 21 ]

अपना वृत्तांत

श्रीहरि के समाज-सुधार एवं धर्म-सुधार से तत्कालीन लोकजीवन में आमूल परिवर्तन आने लगा था। उनके साथ-परस्रोतों के आगे अन्य वैरागी तथा संन्यासी निस्तेज लग रहे थे। कई पाखंडी वैरागियों के मठ बंद होने लगे थे। जनसमुदाय में सत्य धर्म के प्रति रूढ़ि बढ़ रही थी। परंतु श्रीहरि के अहिंसायुक्त यज्ञों के प्रचार से कुछ ब्राह्मण अप्रसन्न भी हो रहे थे। समाज के तथाकथित शासक तथा कुछ उच्च वर्ण के स्वार्थी लोग श्रीहरि के प्रति दुर्भाव रखने लगे थे। समाज के ऐसे अस्तुत लोगों ने श्रीहरि के बारे में अनेक प्रकार से मनगंगत बातें फैलाना प्रारंभ कर दिया था। महाराज की लोकोत्तर महत्ता को सहन नहीं कर पाने के कारण अनेक ब्राह्मणों और वैरागियों ने केवल विरोध के लिए ही ऐसा प्रचार आरम्भ किया था कि –

‘स्वामिनारायण भगवान नहीं हैं, वे जादूगर हैं, उन्होंने बाबरा नामक भूत को वश में किया है। इसलिए भोले-भाले लोग उनके पीछे-पीछे चुपचाप हैं। वे ब्राह्मण परिवार से नहीं हैं, अतः उनको यज्ञ आदि करने का
कोई अधिकार नहीं है। वे तो मोची जाति के हैं। इसलिए काठी, कोली,
कुबेरी, बढ़ई, लोहर, मोची आदि निम्न जाति के लोगों के साथ घूमते
रहते हैं।’ हालाँकि ऐसी काल्पनिक बातों पर श्रीहरि तनिक भी ध्यान नहीं
देते थे। परंतु इस कुप्रचार के कारण परमहंसों के प्रचार-कार्य में अवश्य
कठिनाइयाँ पैदा होती थीं। कुछ परमहंसों और हरिभक्तों ने श्रीहरि से
निवेदन किया, ‘प्रभु! बड़ोदरा में शोभाम शास्त्री और राजकारोबारी
चीमनरावजी जनादेव का ब्राह्मणों पर अच्छा वर्चस्व है। आप पत्र द्वारा
दोनों को अपना वृजान्त लिख भेजिए, इससे वे ब्राह्मणों को वास्तविकता
से अवगत कर सकें और कुप्रचार रूप जाए।’

अनुयायियों के भाव-आग्रह से संवत् 1878 (सन् 1821) पोष शुक्ला
द्वितीया बुधवार को श्रीहरि ने उन दोनों पंडितों को निमानुसार पत्र लिखा।
‘गढ़पुर से स्वामी सहजानन्दजी का जय स्वामीनारायण पाठिएगा।
परमहंसों द्वारा भेजा गया आपका पत्र मिला। समाचार जात हुए। आपने लिखा
है कि आपके सत्संग की निष्ठा हमारे हदय में दूढ़ हुई है, परंतु आपके समान
dक्षिणी लोगों में हमारी जाति और सम्प्रदाय के विषय में अनेक प्रश्न अनुज्जित
रहे हैं। इसी कारण कई लोगों के हदय शांकाओं से आशंकित हैं। ऐसे संशयों
की निवृत्ति के लिए हम अपनी जन्मभूमि, जाति और सम्प्रदाय के विषय में
सत्य हकीकतें इस पत्र के द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं।
‘उत्तर भारत में अयोध्या का प्रदेश सर्वार प्रदेश कहलाता है। वहाँ
मनोरमा नदी के किनारे पर मखोटा तीर्थ के उत्तर की ओर करीब एक मील की
दूरी पर छपिया नाम का एक गाँव है। वही हमारी जन्मभूमि है। छपिया गाँव
हमारे मामा की जमींदारी का गाँव है। उसमें हरिप्रसाद पांडे नामक सर्वरिया
साम्बवेदी ब्राह्मण के घर हमारा जन्म हुआ। उनका सार्वर्ग गौत्र है, कोशुमी
उनकी शाखा है। भार्गव, वैदिक और सावेत्स नामक उनके तीन प्रवर हैं।
हम उनकी ही संतान हैं। हमारे पितामह को सिसंत्र राजा ने इतार गाँव उपहार
के रूप में दिया था, इसलिए वे ‘इतार के पाण्डे’ कहे जा रहे हैं।
बाल्यकाल के बाद माता-पिता के देहोत्सर के बाद हम भारत भर में
tीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े हैं। विचारण करते हुए हम द्रविड़ प्रदेश
इस प्रकरण में आपात संवत् 1878 के प्रसंग दिये गये हैं।
नरनायण देव की प्रतिष्ठा

संवत 1876 (सन् 1819) कार्तिक कृष्णपक्ष में श्रीहरि वर्तमान से अहमदाबाद पढ़ाए। कलेक्टर डालॉप श्रीहरि के दर्शन के लिए पढ़ाए। उन्होंने 10. ये गोपालानन्द स्वामी, आत्मानांद स्वामी के गुरु थे।
कहा, 'महाराज! इतने बड़े शहर में आप अपना कोई मठ या मंदिर क्यों नहीं
बनवाते? आप कृपया यहाँ भी अपना स्थान बनवाइए, जिससे आपके साधुओं
का सुखपूर्वक निवास हो, जहाँ आप धूमधाम से उत्सव मना सकें।
अहमदाबाद में आपको जितनी भूमि चाहिए, में आपको दे सकता हूँ।' श्रीहरि
ने अनेक स्थलों पर मुलाकात ली। अंतः: नवाबस में पाठकवाड़ी नामक जगह
पसंद करके कलेक्टर से कहा, 'यदि वह जगह मिले तो वहाँ मंदिर निर्माण
करके हम नरनारायण देव की प्रतिष्ठा करेंगे।' उस समय में 99 वर्ष के पट्टे पर
भूमि देने की प्रथा थी। परंतु डनलॉप ने ताम्रपत्र पर लिखकर हमेशा के लिए,
वह भूमि श्रीहरि के चरणों में समर्पित कर दी।

सब से पहले श्रीहरि ने संतनिवास के लिए एक धर्मशाला का निर्माण
करवाया। तत्पश्चात् आनंदनांद स्वामी को शिखरबद्ध मंदिर के निर्माण के
लिए आदेश दिया।

उन्होंने पत्थर में से एक शिखरीय मंदिर का निर्माण किया। मंदिर
तैयार होते ही उन्होंने श्रीहरि को पत्र द्वारा सूचित किया। उन्होंने तुरंत
निमंत्रण पत्रक्र तैयार करवाई और संवत् 1878 (सन् 1821) के फालून
शुक्ला तृतीया के दिन बड़ी धूम-धाम से वैदिक विधि के अनुसार अपने
ही हाथों से नरनारायण देव की मूर्ति-प्रतिष्ठा की। प्रथम आरती के बाद
श्रीहरि ने कहा, 'आगे चलकर यहाँ तीन शिखरीय मंदिर का निर्माण
करना।' इस प्रकार सतसंग के इतिहास में अहमदाबाद शहर में सर्वप्रथम
शिखरबद्ध मंदिर का निर्माण हुआ। नरनारायणदेव की प्रतिष्ठा के बाद
श्रीहरि ने शहर के समस्त ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प किया।
लेकिन धन के अभाव में ऐसा ब्रह्मभोज संभव नहीं था। श्रीहरि ने कहा,
'कोई सेवासाधी भक्त मिल जाए, तभी यह संकल्प पूर्ण हो सकता है।'
किसी ने लाललाल होरा नामक एक सेठ का नाम बताया। उनको बुलाकर
श्रीहरि ने कहने लगे, 'हमें ब्रह्मभोज से ब्राह्मणों को तृप्त करना है। उसके
लिए क्या आप धन का प्रबंध कर पाओगे?' उन्होंने कहा, 'प्रभु! इसके
लिए मुझे अपनी पत्ती से पूछना पड़ेगा।'

सेठजी ने अपनी पत्ती से पूछा तो वह कहने लगी, 'धर्मकार्य में मेरी
सम्मति की क्या आवश्यकता है? रूपए भगवान के हैं, भगवान के काम
आ रहे हैं और भगवान स्वयं उसे माँग रहे हैं, तो सोचने-पूछने की आवश्यकता ही क्या है? अभी, इसी समय दे दीजिए।' लालदासजी ने तुरंत सात हजार रुपए की थैलियाँ बेलगड़ी में भरकर श्रीहरि के चरणों में अर्पण कर दी। श्रीहरि ने व्यवस्था का आरंभ कर दिया। घुड़सवारों को भेजकर जेलतलुप गाँव तक अनेक ब्राह्मणों को निमंत्रण भेज दिया गया। पूरे सौराष्ट्र और कच्च से आये हुए हजारों हरिभक्त तो अभी उपस्थित ही थे।

फाल्गुन शुक्ला पंचमी से कांकरिया तालाब के किनारे पर सारी व्यवस्था की गई थी। ब्राह्मण आने लगे। चूमे के लड़कू, दल, भात, साग, सेब और भूजिया की रसोई तैयार हुई। ब्राह्मणों तथा हरिभक्तों ने भोजन किया। अंत में श्रीहरि भोजन के लिए पधारे। तत्पश्चात् सभा में हरिभक्तों ने श्रीहरि का पूजन प्रारंभ किया, अपनी शक्ति अनुसार वे भेंट अर्पण करने लगे। जब कोठारी ने वह रकम गिना तो सात हजार रुपए और पत्थर पैसे का विसाब हुआ। श्रीहरि पुस्तुराने लगे, फिर लाठा ठककर से कहा, ‘इसमें से लालदासजी के रूप में लौटा दो।’ अब रह गई केवल अठनी। लाठा ठककर मजाक में कहने लगे, ‘यह तो गड़पुर तक जाने की खार्च तक नहीं निकला!’ श्रीहरि कहने लगे, ‘जब हम आपके साथ हैं तो ऐसी धिरों मिला क्यों करते हैं?’

उसी दिन संध्या के समय श्रीहरि अहमदाबाद से जेलतलुप आ पहुँचे। यहाँ पर श्रीहरि ने मानसिक उदासी ग्रहण कर दी। उनका शरीर बुखार से तपने लगा। दूसरे दिन वे थोड़ा सा भोजन करके विचरण के लिए निकल पड़े। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को कोठ गाँव के पास गणेश ठोलका नामक स्थान पर पहुँचे। मन्दिर में दाहिनी ओर की सूँडवाले गणपति की सूँड पर हाथ फिराया। खिरनी के पेड़ के नीचे कुछ देर तक विश्राम किया। उन्होंने अपनी सारी वृत्तियाँ अन्ततः में समेटकर उदासीनता धारण कर ली। मन से सारे संकल्पों-विकल्पों को विराम दे दिया। उन्होंने कहा था कि हमने उस प्रकार वृत्तियाँ समेट ली थी कि जैसे कांकरिया तालाब पर गए ही नहीं थे, तथा यज्ञ-मेला-ब्रह्मोत्सव आदि कुछ हुआ ही नहीं था! ऐसा सांख्यज्ञान करने पर उनकी मानसिक बीमारी का निवारण हुआ...।
’हमको कैसा कहेंगे?’

संध्या ढल रही थी। श्रीहरि गढ़पुर में वासुदेवनारायण के कर्मर के
बाहर सभा में बिराजमान थे। उस समय चर्चा चल रही थी कि श्रीहरि को
राजास्वरूप भगवान कहना चाहिए अथवा साधुस्वरूप भगवान? यह सुनने
ही श्रीहरि ने एक सुंदर चरित्र किया। अपनी देह से आभूषण निकालकर वे
साधुओं की ओर फेंकने लगे और वस्त्र उतारकर स्त्रियों की ओर फेंकने
लगे। यह देखकर ब्रह्मान्द स्वामी ने पूछा, ‘महाराज! आप भी विचित्र हैं,
आप हमारी ओर तो आभूषण फेंकते हैं। वे हमारे किस काम के? और
स्त्रियों की ओर आप कपड़े फेंकते हैं, उनको ये कपड़े किस काम के?
आपने दिया तो सही, परंतु ऐसा दिया कि किसी के काम तक नहीं आये।’
सभी हँसने लगे।

कुछ देर के बाद श्रीहरि ने अपनी एक और राजा के वस्त्र पहने तो
दूसरी और साधु के धारण किए। नीचे की ओर एक पैर में जामा पहना तो
ऊपर की ओर भगवा कपड़ा ओढ़ लिया। उनके एक हाथ में माला थी, तो
दूसरे हाथ में तलवार। सिर पर प्यासी पहने हुए श्रीहरि ने कहा, ‘अब आप
मुझे कैसे कहोगे? मैं राजास्वरूप भगवान हूँ या साधुस्वरूप?’ तब सभी कहने
लगे, ‘महाराज, आप न तो राजा हैं, और न साधु।’ तब श्रीहरि ने कहा,
‘अपने जैसे तो केवल हम एक ही हैं। पहले जो हो गये वे अवतार थे और
हम अवतार हैं।’ श्रीहरि के उपदेश का मर्म हर कोई समझ गया। सभी ने
मिलकर अपने हदय में निश्चय किया कि वास्तव में ये तो अवतार के
अवतार है।

बन्दर ने माला घुमाई

श्रीहरि गढ़पुर से रामनवमी के लिए बरताल पढ़ाए। एक दिन शाम को
धार टालकर के निकट सभा में बिराजमान थे। वहाँ एक बन्दर कूदता फाँटता
वहाँ आ पहुँचा। उसकी ओर देखकर कुछ काठियों ने भार्मिक भाषा में कहा,
‘महाराज, रामचन्द्रजी की सेना में क्या ऐसे ही बन्दर थे? ऐसे बन्दर क्या
हथियार लेकर लड़े होंगे?’ महाराज ने कहा, ‘ऐसे ही बन्दरों ने भगवान के
प्रभाव से सामथ्र्य पाया था और युद्ध में लड़े थे।’ काठियों ने कहा, ‘अच्छा तो इस बन्दर के द्वारा भी कोई देवी क्रिया आय करवाए न!’

श्रीहरि ने अचानक एक बन्दर पर दृष्टि की। तुरंत कूदकर सभा के बीच आ गया और बन्दर करके महाराज के सामने बैठ गया। महाराज ने उसी पल इसके हाथ में माला थमा दी। वह बन्दर स्वस्तिक आसन में बैठकर ‘स्वामिनारायण’ मंत्र का जाप करने लगा और माला घुमाने लगा।

इसके उपरांत वह रामचरितमानस की चोराइयाँ भी बोलने लगा।

उसे देखकर काठी बोले, ‘यह तो वास्तव में आश्चर्य है, परंतु महाराज, बन्दरों ने इतनी छोटी सी देख से गन्धमदन जैसा महान पर्वत कैसे उठाया होगा?’ श्रीहरि ने उस बन्दर के सामने देखा, तो उसने धीरे-धीरे विशाल रूप धारण कर लिया और हाथ में गन्धमदन पर्वत उठाकर आकाश में उड़ता हुआ अदृश्य हो गया। सब इस घटना को देखते ही रह गये।

रामनवमी के बाद श्रीहरि ने वर्तमान में तीन शिखरीय विशाल मन्दिर का शिलान्यास किया। वहाँ अपने ही हाथों से अपनी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का उनका निश्चय था। गुजरात के हरिभक्तों ने खुलकर दान किया। मन्दिर-निर्माण के काम में महाराज ने ब्रह्मान्द स्वामी, अक्षरान्द स्वामी और आनन्दान्द स्वामी की नियुक्ति की।

नींब की खुदाई शुरू हुई। सबके साथ श्रीहरि भी मिट्टी के टोकरे अपने सिर पर उठाकर सेवा करने लगे। तीस ईंटें उनके द्वारा भी ढोई गई। सेवा ही उनका जीवन था और विनम्रता ही उनकी प्रकृति।

**सहजानन्दरूपी सूर्य**

दूर-दूर विचरण कर रहे संस्कृतों को श्रीहरि ने जुनागढ़ जिले के पंचाला गाँव में निर्मित किया। यहाँ उन्होंने पुष्पदलोत्सव को भव्य आयोजन किया था। जितने संस्कृत रास खेल रहे थे उतने ही स्वरूप धारण करके श्रीहरि ने भी उनके साथ रास खेल कर अति अपर आनंद दिया। इस अवसर पर उन्होंने सारे गाँव को भोजन के लिए निर्मित किया। जब सभी भोजन करके तुल्य हुए तब श्रीहरि ने पूछा, ‘कोई खाने में रह तो नहीं गया?’ व्यवस्थापक संस्कृतों ने कहा, ‘महाराज, घर-घर जाकर पूछ लिया गया हैं। अब तो कोई भोजन
लेने में बाकी नहीं रहा।’

परन्तु श्रीहरि ने बहती नदी के उस पार कुछ मैल-कुचले कपड़ों में घूमते लोगों को देखा तो पूछा, ‘बें कौन हैं? क्या उन लोगों को भोजन खिलाया?’ कुछ लोग कहने लगे, ‘प्रभु! ये तो जंगल में रहने चाले वाघरी हैं। उन लोगों को भला कौन खिलाता?’

श्रीहरि की आंखों में करण की आईता छा गई। उन्होंने कहा, ‘क्या सूर्य केवल पुण्यशाली लोगों के लिए ही निकलता है? बरसत भी पापी और पुण्यशाली दोनों के लिए बरसता है, पापी या पुण्यशाली में उन्हें कोई भेद नहीं होते। उसी प्रकार आज सहजानन्दरूपी सूर्य उदित हुआ है। हमें तो सभी का कल्याण करना है। जाइए, उन्हें बुलाइए। हम उनको भी भोजन देकर तृप्त करेंगे।’

हरिभक्तों ने नदी के उस पार जाकर वाघरियों को भोजन के लिए बुला लिया। श्रीहरि स्वयं ने उन्हें भोजन परोसने के लिए पधारे। वे आज श्रीहरि की कुणा से कुटार्थ हुए। अन्तर्काल में उन्हें श्रीहरि का स्मरण होने लगा। श्रीहरि ने उनका भी कल्याण किया।

[ 22 ]

भुज में मूर्तिप्रतिष्ठिा

अहमदाबाद में नरनारायण देव की प्रतिष्ठा करके श्रीहरि विचरण करते हुए गढ़ड़ा पहुँचे। कच्च से पथरे हुए कुछ हरिभक्तों ने उनके चरणों में निवेदन किया, ‘हे महाराज! आप कच्च में भी ऐसा विशाल मंदिर निर्माण करें। हम हर तरह की सहायता करेंगे।’

उनका उत्साह देखकर श्रीहरि कहने लगे: ‘यह वास्तव में सुंदर विचार है। हम भुज नगर में मंदिर-निर्माण के लिए वैष्णवान्द स्वामी को भेज रहे हैं, जो तुम्हारी हर तरह से सहायता करेंगे।’

देखते ही देखते भुजनगर में मंदिर का निर्माण हो गया। भक्तों के भक्तिभाव को देखकर श्रीहरि मूर्ति प्रतिष्ठा के लिए संशोधन भक्तों के साथ कच्च के लिए चल दिए।

श्रीहरि के साथ काठी दरबारों ने अश्वों पर सवारी की थी, संतों ने इस प्रकरण में आपाती संवत 1879 के प्रसंग दिये गये हैं।
पैदल चलना आरंभ किया था। लगभग देसी बैलगाड़ियों में हरिभक्त बिराजमान थे। पन्डित-बौद्ध बैलगाड़ियों खाने की सामग्रियों से भरी थीं।

भुज में श्रीहरि का निवास हीरजीभाई के घर किया गया।

सन् 1878 (सन् 1822) वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन भूजनगर में श्रीहरि ने धूखधाम से नरायण देव की प्रतिष्ठा की। सारे कच्चे प्रदेश में श्रीहरि का जय-जयकर हो गया। यहाँ वे कई वर्षों के बाद पधरे थे, इसलिए स्थानिक हरिभक्तों के मन में आनंद फहरायें उड़ रही थीं। यहाँ से हलवद, चोटीला, नागड़का और लोया होकर श्रीहरि गढ़पुर आ पहुँचे।

[ 23 ]

हमारा जड़भरत

गढ़पुर में जन्माष्टमी के उत्सव में मुक्तानन्द स्वामी रचित कृष्णपद गाये गए। दिवाली और अनन्दकृत का भी उत्सव भी यहाँ मनाया गया। धनत्रयोदशी से लेकर अनन्दकृत तक प्रतिदिन प्रातःकाल और रात्रि के समय श्रीहरि वासुदेव नारायण के कमरे के समक्ष बिराजमान होते थे। उनके आस-पास में सेवक संत दीपमला से दिव्य वातावरण का निर्माण करते थे। रंगोली रचना, दीपावली के स्वरचित पतंज का गान करना, अनन्दकृत रसोई तैयार करना आदि सेवा में संत-हरिभक्त हमेशा तत्पर रहते। श्रीहरि दूध दुहने के समय वहाँ जाकर उपस्थित रहते। कभी-कभी वे स्वयं जाकर पशुशाला में दूध दुहने बैठ जाते?

संध्या के समय लक्ष्मीबाड़ी में अश्व विद्या के खेत खेलकर काठी हरिभक्तों को प्रसन करते।

इस वर्ष अनन्दकृत का उत्सव भव्यता से सम्पन्न हुआ। भोजन के समय पर श्रीहरि ने आदेश किया कि ‘छोटे-छोटे संत पंक्ति में परीसों के लिए तैयार रहें और बड़े संत भोजन अंगीकार करें उसके बाद भोजन के लिए बैठें।’ श्रीहरि स्वयं आज जलेबी लेकर संतों की पंक्ति में परीसों के लिए पधरे।

सर्दी के दिन शुरु हुए। मार्गशीर्ष महीना की ठंड पूरे मुक्त को ठोस रही थी। गढ़पुर में एक हरिभक्त श्रीहरि के लिए एक मोटा सा कम्बल कंगल ले आये। वह इतना खुदरा था कि शरीर को डंक की भीति चुभता इस प्रकरण में आयामी सन् 1880 के प्रसंग दिये गये हैं।
भी था। ठोंठे से घर्षण से त्वचा लाल हो जाती थी। फिर भी श्रीहरि उस हरिभक्ति के भाव का स्मरण करके हमेशा वही कम्बल ओढ़ा करते थे।

अनेक समयों ने युक्तपूर्वक श्रीहरि से वह कम्बल मांगने की कोशिश की थी। किन्तु श्रीहरि उनको दूसरा कम्बल दिलवा देते—परन्तु वह मोटा और खुदरा कम्बल किसी को नहीं देते।

पूर्णिमा का दिन था। प्रातःकाल श्रीहरि कथा कर रहे थे। उस समय एक हरिभक्त एक सुंदर और महिला शाल लेकर आया।

उस समय मुक्तानंद स्वामी ने गुणातीतानंद स्वामी से कहा, ‘महाराज का वह मोटा सा खुदरा कम्बल अभी महाराज से मांग लीजिए।’

गुणातीतानंद स्वामी ने भी अवसर देखकर श्रीहरि से कहा, ‘महाराज, आप के लिए यह सुंदर और कोमल शाल ठीक रहेगी; अब आप वह मोटा सा कम्बल मुझे देने की कृपा करें।’

श्रीहरि पहले तो देने से मना कर दिया परन्तु मुक्तानंद स्वामी ने कहा, ‘महाराज! यह निरुपणंद स्वामी\(^{11}\) जड़भरत की तरह हैं, उनको वह कम्बल वैसे भी बहुत पसंद है। यदि आप उन्हें दे दें, तो बहुत अच्छा रहेगा।’ श्रीहरि ने हँसकर कहा, ‘लीजिए यह कम्बल! आप ही तो हमारे जड़भरत हैं।’ इतना कहकर उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी को वह कम्बल ओढ़ा दिया।

**धर्मकुल से मिलन**

मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष में श्रीहरि कारियाणी पथरे। यहाँ किसी हरिभक्ति ने आकर श्रीहरि को खबर दी कि धर्मकुल के कुछ सदस्य आप के दर्शन के लिए पथार रहे हैं।

महाराज घोड़ी पर सवार होकर समदियाला गाँव के निकट शामी वृक्ष के नीचे पथरे। जहाँ आज सुपूर्व के लिए एक चबूतरा तैयार किया गया है।

आज अयोध्या से रामप्रतापभाई की पत्नी मुजाहिमी, इच्छारामभाई की पत्नी वरियालीवाई तथा उनके पुत्र रघुवीरजी एवं अयोध्याप्रसादजी श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे।

\(^{11}\) गुणातीतानंद स्वामी का दूसरा नाम निरुपणंद था।
बतीस वर्षों के बाद देवर-भौजाई का मिलन हो रहा था। सुवासिनी भाभी की आँखों से आनंद के हर्षश्रृ बह रहे थे। वे सोचती थीं कि यह स्वप्न तो नहीं है?

कारियाणी में सभी श्रीहरि की अक्षरकुटीर पर पहुँचे। श्रीहरि ने सभी का कुशल समाचार पूछा। भाभी से क्षमा-याचना की। आज तो भाभी की खुशी का ठिकाना नहीं था। जब श्रीहरि भोजन करने बैठे, तब कई वर्षों के बाद उन्होंने श्रीहरि को परोसने का अवसर उठा लिया।

कितने सालों के बाद भाभी की भक्ति सफल हुई। उनकी सेवा के फलस्वरूप उन्हें पुनः श्रीहरि की सेवा और दर्शन प्राप्त हुए। बतीस वर्षों के बाद उनके आँखों से आनंद की अश्रुधारा बह रही थी।

‘यह कीचड़ नहीं चन्दन है’

श्रीहरि ने प्रबोधनी एकादशी का उत्सव वर्तमान में मनाया। वहाँ मंदिर-निर्माण का सेवाकार्य चल रहा था। संत और हरिभक्त अत्यन्त परिश्रम पूर्वक मंदिर निर्माण की सेवा कर रहे थे। उन्होंने प्रस्तावित करने के लिए, श्रीहरि कुर्सी पर बैठकर सभी का मार्गदर्शन करते थे। उनकी प्रेरणा, बल तथा प्रोत्साहन से हर कोई अत्यन्त उत्साह से सेवा कर रहे थे। एक दिन उनकी सेवाभावना से प्रसन्न होकर श्रीहरि ने कहा, ‘आप लोग कितना परिश्रम कर रहे हैं! हम आप सभी को एक के बाद एक गले मिलना चाहते हैं।’

यह सुनकर स्वामी भक्तिप्रियानंदजी ने कहा, ‘लेकिन प्रभु, हमारे शरीर तो कीचड़ से सने हुए हैं।’

तब श्रीहरि ने हँसते हुए कहा, ‘यह कीचड़ नहीं, यह तो चन्दन है।’ आइए, जिनके शरीर कीचड़ से ‘भरे हैं, उनको गले लगाए! ’ यह कहकर जो लोग सेवा कर रहे थे, ऐसे संतों-हरिभक्तों को श्रीहरि ने गले लगाकर बार-बार आशीर्वाद दिया।

उस समय गुणातीतानंद स्वामी दूर खड़े थे। श्रीहरि ने कहा, ‘स्वामी आप भी आइए।’ स्वामी ने तुरन्त कहा, ‘परन्तु महाराज! मेरा शरीर तो कीचड़ से सना हुआ नहीं है।’ उनकी सरल और निर्देश प्रकृति देखकर श्रीहरि और भी प्रसन्न हुए और उनको गले लगाकर आशीर्वाद दिया।
वरताल में लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा

वरताल में मंदिर पूर्ण हो गया। स्वामी अश्वानंदजी ने मूर्तिप्रतिष्ठा का मुहूर्त निकलवाकर श्रीहरि को वरताल आने के लिए निमंत्रण भेज दिया। श्रीहरि ने मयाराम बंधु के कथनानुसार संवत् 1881 (सन् 1825) कार्तिक शुक्ला चतुदशी का प्रतिष्ठा-मुहूर्त तय करके संतों-हरिभक्तों को निमंत्रण-पत्र भेज दिये।

उचित समय पर श्रीहरि वरताल आ पहुँचे। पाँच दिन के यज्ञ के साथ वैदिक विधि के अनुसार मूर्ति-प्रतिष्ठा उत्सव सम्पन्न हुआ। यहाँ श्रीहरि ने सर्वप्रथम ‘हरिकृष्ण’ नाम से अपनी ही मूर्ति की अपनी ही हाथों से स्थापना की। यह उनके भगवतस्वरूप का एक और आदित्य प्रसंग है।

प्रतिष्ठा के बाद श्रीहरि ने प्रत्येक मेमार एवं शिल्पकार पारितोषिक अर्पण किए।

सूरत में पधारावनी

वडताल में सूरत के प्रेमी हरिभक्त पथरे थे उनके प्रेमाग्रह को ध्यान में रखकर श्रीहरि ने कार्तिक कृष्णा द्वितीया को सूरत जाने के लिए प्रस्थान किया।

रघुवर्जी, अयोध्याप्रसादजी, शोभाराम शास्त्री, निन्धानंद स्वामी, भगवदानंद स्वामी आदि विद्वान संत तथा अन्य विशिष्ट हरिभक्त श्रीहरि के साथ जा रहे थे। रास्ते में बोचासण गांव में रात्रि विश्राम किया। श्रीहरि ने यहाँ स्वामी माधवदासजी को कहा, ‘आप पुनः वरताल जाकर परमहंसों को साथ लेकर सीधा सूरत पहुँचे।’ श्रीहरि बोचासण से भरुच होकर नाब के द्वारा नर्मदा पार करके सूरत आ पहुँचे। तापी नदी के उस पार ठीक फिरने पर रुपम बाग में श्रीहरि का निवास था।

कार्तिक कृष्णा सप्तमी का दिन था। सूरत के हरिभक्त श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे। हरिभक्तों ने सोच लिया था की शहर में श्रीहरि का स्वागत धूप-धाम से करना चाहिए। उन्होंने शहर के शूरवीर कोतवाल तथा पारसी भक्त खान अरदेशरजी का भी संपर्क कर लिया था। उन्होंने श्रीहरि इस प्रकरण में आषाढ़ी संवत् 1881 के प्रसंग दिये गये हैं।
को एक पत्र लिख भेजा की 'हम हमारे सुरत शहर में आपका स्वागत करने के लिए आपके पास आएं। आशा है, आप हमारा यह स्वागत तथा सम्मान स्वीकार करेंगे।'

संध्या के समय निकुलानंद स्वामी ने रुस्तम बाग में इमाम की डाली पर सुन्दर झूला बाँधकर श्रीहरि को झूलाया। संतों-हरिभक्तों की सभा में श्रीहरि उपदेश देते हुए कहने लगे, 'हरिभक्तों को परस्पर एक-दूसरे का माहात्म्य समझना चाहिए। आप सब ध्वनि, प्रहाल और अम्रीष के समान भक्त हैं, इसलिए परस्पर दोष नहीं देखना चाहिए। किसी से ईश्वर नहीं करनी चाहिए। हरएक के साथ मैत्री और ऐज्य से व्यवहार करें। तभी सतसंग में विक्षेप नहीं होगा।

'हे संतों! आप एक-दूसरे की बाराबरी मत करना। छोटे-बड़े की मर्यादा का पालन करना। निर्म-धर्म में दूःख रहना। आचार-विचार की शुद्धि रखना। हरिभक्तों से कभी कुछ भी मांगना नहीं। आवश्यकता पड़ने पर अपने मण्डल के सदस्य तथा महंत से मांगना। वे जिसके पास योग्य होगा, उस के द्वारा आवश्यक पदार्थ मांगवाकर दिला देंगे। रात-दिन कथावार्त, भजन, सेवा और संतसंग में ही समय बिताना।'

दूसरे दिन पारसी अरदेशर कोतवाल, उनके भाई पीश्शा, भालचंद्र सेठ, हरगोविन्द पटेल, जगजीवन महेंद्र, लक्ष्मीचंद्र सेठ, दयालाम मारफतिया, माणेकचंद भाई आदि बड़े बड़े हरिभक्त, संघ के साथ बिलायती बैंड-बाजे लेकर स्वागत-यात्रा के रूप में आ पहुँचे। श्रीहरि माणकी घोड़ी पर सवार थे। बड़े परमहंस रथ में बिराजमान थे। रघुवीरजी और अयोध्याप्रसादजी पालकी में उपस्थित थे। श्रीभायात्रा बड़ी धूमधाम से संपन्न हुई। श्रीहरि ने आज सुरत नगर को पुनः पावन किया।

एकादशी के दिन सूरत के शास्त्रियों के साथ श्रीहरि के परमहंसों के शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। परमहंसों की विजय होने पर भी श्रीहरि ने प्रतिपक्षी विद्वानों को दक्षिणा-वत्स्र आदि देखक हत्यापूर्वक समापित किया।

सूरत जिले के न्यायाधीश मि. एन्दरसन ने श्रीहरि को अपने घर पधारे का निमंत्रण दिया। श्रीहरि उनकी संतों-भक्तों के साथ उनके घर पधारे। एन्दरसन ने अपनी हंट उतारकर श्रीहरि का अभिवादन किया। गुलाब के
पुष्पहार एवं पुष्पगुण्ड्र अर्पण किया। आनेवाले भक्तों के वस्त्र पर इतने छिड़क कर, सभी की काजू-बादाम आदि थाल अर्पण किया। श्रीहरि ने श्रीरक बांते कहा। तत्पश्चात् मि. एंडरसन ने दादाखाँचर एवं मुख्यान्त्र स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा, 'आप लोगों ने डभान में यह का भव्य आयोजन किया था, तब संवत् 1867 (सन् 1809) में री मुलाकात स्वामिनारायण महाराज से हुई थी। उस समय ये खुश और कृतकाय थे। अब कुछ पुष्ट मालूम पड़ते हैं। कई वर्षों के बाद आज मुझे उनके दर्शन का अवसर मिला। आप उनकी अच्छी तरह देखभाल रखिए। क्योंकि उनके जैसे महापुरुष की इस देश को बहुत आवश्यकता है।'

एंडरसन के पड़ोसी मि. जेवन की बिंदी से श्रीहरि उनके घर भी पधारे। उन्होंने श्रीहरि को इतने को एक बोतल तथा एक विदेशी रुपाल भेंट किया। उनको प्रेक्ष उपदेश देकर, श्रीहरि अपने निवासस्थान पर पधारे। आज अर्दशर कोटवाल ने श्रीहरि के साथ प्रश्नोत्तर करके सत्तंग की विशेष दृढ़ता प्राप्त की। श्रीहरि ने भी उनको अपने भगवत्वकुण का परिचय करवाया।

मार्गशीर्ष द्वितीया का श्रीहरि पुनः पनक के बाहर स्तम्भ बाग में पधारे। यह बाग उस समय से नारायण बाग के नाम से प्रख्यात होने लगा। सभा के बाद अर्दशर कोटवाल ने श्रीहरि से निबिदन किया, 'आप स्वयं खोदाई है, अहुरमज्दाद हैं। हमने सुना है कि रामचन्द्रजी ने भरत को पूजा करने के लिए अपनी पाठुका दी थी, उसी प्रकार आप भी अपनी कोई चीज प्रसादीरूप में देने की कृपा करें, जिससे में प्रतिदिन आपका स्मरण करते हुए आपकी पूजा कर सकूँ।' अर्दशरजी की शुभ दृढ़ता की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि ने उनको अपने सिर से फाड़ी उतारकर दे दी। किसी कंगाल को जैसे सोने का चर मिल जाए उनकी प्रसन्नता अर्दशरजी के चेहरे पर झलकने लगी। आज भी वह फाड़ी उनके बंशजों ने समझाल कर रखी है।

करसनदास और जगजीवनबाई ने उसी समय श्रीहरि को नई पाँड़ी अर्पण की। श्रीहरि संघ के साथ गढ़पुर जाने के लिए निकल पड़े।

गढ़पुर में उन्होंने वसंतपंचमी का उत्सव किया तथा अष्टमी के दिन दादाखाँचर के विवाह के अवसर पर भट्टवर जाने के लिए प्रस्थान किया।
श्रीहरि ने केवल यही सोचकर दादाखाचर का विवाह रचा था कि ऐसे भक्त दादाखाचर का विवाह भटवर के ठाकुर नागपालजी की पुत्री जसुमती के साथ रचकर वे गढ़डा लौट आये।

**विशाप रेजिनाल्ड हेबर से भेंट**

ईसाई मजहब के प्रचारक तथा स्त्रिस्त्री मिशन के अप्रणी रेवंड विशाप रेजिनाल्ड हेबर कलकत्ता और उत्तर भारत में ईसाईयत का प्रचार करने के लिए नियुक्त हुए थे। वे सन 1825 में भारत भ्रमण के दौरान गुजरात आ पहुँचे। यहाँ बड़ोदा के कलक्टर विलियम्सन से मिले। उन्होंने विशाप हेबर को श्रीहरि के विलक्षण समाज-सुधार के कार्य की अपार महिमा सुनाई।

विलियम्सन ने कहा, ‘स्वामिनारायणजी ने गुजरात में बहुत ही सुन्दर कार्य किया है। धर्मसुधारक एवं समाजसुधारक के रूप में उनकी लोकप्रियता पूरे गुजरात में चर्म पर है। इसका पता मुझे बड़ोदा आने के बाद मिला। उनकी उपदेश-कला सरल एवं प्रेरक है। उनका धर्मोपदेश हमारे किसी शास्त्रों की अपेक्षा उच्चतर है। वे विशुद्ध आचरण एवं स्वतंत्रों के प्रति मानपुर्वक पवित्र दृष्टि से देखने का उपदेश देते हैं। चीरी तथा हिंसा का निषेध करते हैं। जिन बुरे से बुरे गाँवों, जिलों और प्रदेशों में उन्होंने कार्य किया है, वहाँ की जनता आज सबसे अधिक सदाचारी है, तथा नियम-कानून और व्यवस्था में अनन्य है।’

यह सुनकर विशाप हेबर के हदय में उत्कंठा जाग उठी कि मुझे भी स्वामिनारायण महाराज को श्रीराम ही मिलना है। अंततः उन्होंने श्रीहरि के पास अपना संदेश भजवाया।

वे डाहान में विराजमान थे। मिठाई का दोना और पुष्पमाला आदि के साथ श्रीहरि ने छ: हरिभक्तों को विशाप हेबर के पास बासद गाँव में भेजा। उन्होंने विशाप साहब को पुष्पमाला अर्पण करके मिठाई का दोना भेंट दिया। विशाप साहब उनको देखते ही विशमित रह गए। क्योंकि उन्होंने मुना था कि विभिन्न जाति के लोग भारत में एक साथ नहीं रह सकते और वे एक दूसरे के
खून के प्यासे रहते हैं। लेकिन यहाँ तो वैध, काठी, कोली, राजपूत, रावत और मुसलमान जाति के छ: भक्त लिलक-टिका लगाए हुए, अलंकत विनम्रता से उनके सामने खड़े थे। परस्पर विरोधी स्वभाव एवं संस्कार वाले ये विभिन्न जाति के लोगों को एकसाथ देखकर वे कुतुबल पूर्वक पूछने लगे, ‘क्या आप सभी स्वामिनारायण के भक्त हैं? आप अलग-अलग जाति के होने के बावजूद सब एकसाथ मिलकर कैसे रह सकते हैं?’

भक्तों ने कहा, ‘हम स्वामिनारायण के भक्त हैं और भिन्न भिन्न जाति के होने के बावजूद हम उसी प्रकार रहते हैं जैसे हम एक-दूसरे के परिवारजन हो। हमारे इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण ने हमें सिखाया है कि एक-दूसरे को भाई मानकर प्यार और बंधुत्व की भावना से व्यवहार करना सीखो। हम उसी प्रकार रहते हैं।’ (विशाल हेवर लिखित ‘नेटिव ऑफ जर्नी श्रु द अपर प्रोविन्सिस ऑफ इंडिया’, पृष्ठ-107)

विशाल के लिए यह बात कल्पना से परे थी। विभिन्न जाति के लोगों को एकजुट देखकर उनको निश्चय हो गया कि वास्तव में स्वामिनारायणजी का कार्य महान है। प्रजा के हदय में इस तरह के भ्रातुभाव का सिचन करना
चालू व में अपूर्णता कठिन है। जिन्होंने इस कठिन कार्य को सहज ही संपन्न किया, वे गुरु समुच महान ही होंगे। बिशाप ने पूछा: ‘महाराज क्या वे हमसे मिलने के लिए आएँगे?’

हरिभक्तों ने कहा, ‘अवश्य, वे कल ही सुबह ग्यारह बजे नड़ियाद पथारे और आपकी उनके साथ मुलाकात हो जाएगी।’ बिशाप यह सुनकर प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन दिन 26-3-1825, रविवार को श्रीहरि तीन सी संत-हरिभक्तों के साथ नड़ियाद आ पहुँचे। हरिभक्तों में पचास बंदूकबाहरी पदाति थे तथा अन्य हरिभक्तों का संघ भी बहुत बड़ा था। इसने विशाल समूह को देखकर बिशाप चकित हो गये। उन्होंने बड़े समाने के साथ श्रीहरि का स्वागत किया, झुककर अभिवादन भी किया। हाथ मिलाकर उन्होंने काली सीसम की कुर्सी पर श्रीहरि को आसन दिया। श्रीहरि ने सभी भक्तों को भूमि पर बैठने का संकेत किया।

श्रीहरि के दिव्य व्यक्तित्व से तथा उनके प्रति आत्मसमर्पण श्रद्धालु भक्तसमूह को देखकर बिशाप मन ही मन अपनी और श्रीहरि की तुलना करने लगे। उन्होंने अपने ग्रंथ में लिखा है कि जब मैंने स्वामिनारायण के अंगरक्षक भक्तों की सेना देखी तो मुझे मेरे अंगरक्षक दिखाई दिए। वे मेरी रक्षा तो अवश्य करते हैं परंतु केवल बेतन भोगी की तरह! वे मुझे पहचानते तक नहीं और न ही मेरी परवाह करते हैं। जबकि स्वामिनारायणजी के अंगरक्षक भक्त अवैतिक एवं आत्मसमर्पण हैं। वे स्वेच्छापूर्वक उनको अपने भगवान समझकर उनकी भक्तिपूर्वक सेवा-शुरुआत करते हैं। धार्मिक ऊँचाई की दृष्टि से हम दोनों में कितना बड़ा अंतर है!’

कुछ पत्तों के बाद बिशाप ने पूछा, ‘महाराज! आपको असुविधा न हो तो अपना सिद्धांत हमें समझाएँ।’

श्रीहरि अपने सिद्धांत को स्पष्ट करने लगे, ‘परमेश्वर हमेशा एक ही है। उन्होंने ही सृष्टि का सुझान किया है। वे ही सर्वाधार हैं, वे ही हर्षेश्वर हैं, सर्वभावि है। उन परमेश्वर को हम हिन्दू ‘परब्रह्म’ कहते हैं। उनके कई अवतार हो चुके हैं। उस परब्रह्म के अवतार को कोई कृष्ण कहता है, तो कोई सूर्य कहता है। वह में ही हैं।’
बिशप ने इतना सुना ही था कि उनकी वृत्तियाँ श्रीहरि के स्वरूप में आकृति हो गई। वे बाइबल की एक प्रति श्रीहरि को देना चाहते थे, परन्तु वह हिन्दी या गुजराती में न होने के कारण नहीं दे सके। श्रीहरि ने सिख्हशास्त्र की एक प्रति और एक चित्रप्रतिमा उनको भेंट के रूप में दी। बिशप के मन में श्रीहरि के दर्शन के बाद इतना तो स्पष्ट हो गया कि इस देश में जब ऐसे महापूर्ण जन्म लेते रहेंगे, तब तक उनको ईसाई मूल्यों की कोई आवश्यकता नहीं है। ये इस देश की जनता को भारतीय परंपरा के मूल्यों से ऐसे महापूर्ण सुसंस्कृत करते रहेंगे।

ढारिका की गोमती वर्ताल में

उस समय भी लोग बड़ी संख्या में ढारिका की यात्रा के लिए जाते थे। उत्तर में बदरी-केदार, पूर्व में जगन्नाथपुरी, दक्षिण में रामेश्वर की यात्रा के साथ पश्चिम में ढारिका की यात्रा धर्म प्रेमियों के लिए अनिवार्य थी। सारे देश के तीर्थों की यात्रा पैदल करने पर भी यदि ढारिका की यात्रा न की हो तो उसकी यात्रा अथूरी समझी जाती थी। ढारिका में गोमती स्नान करके लोग अपने बाहु पर तप मुद्रा लेते थे, ढारिकाश्री के दर्शन करते थे। तभी ढारिका की यात्रा परिपूर्ण मानी जाती थी। उस समय वह यात्रा कपड़साध्य थी, मार्ग में चोर-लुटरों का भय था, दुष्ट वैरागियों का तास भी कम नहीं था। ढारिका के प्रवेशद्वार पर गुगली ब्रह्मण बिना सुवर्णमुद्रा की दक्षिणा लिए तप मुद्रा नहीं देते थे। इस प्रकार अकिंचन यात्री के लिए परेशानियों का अंबार लगा था। ऐसा ही कटु अनुभव धर्मकुल के साथ ढारिका की यात्रा पर गये सचिवदांद व्यामी को भी हुआ था।

श्रीहरि ने जब वर्ताल में लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा की तब कहा था कि ढारिका की तरह यह भी बहुत बड़ा तीर्थस्थान होगा। हरिनवमी से पूर्व श्रीहरि चेत्र शुक्ला सप्तमी के दिन वर्ताल पधारे। गुजरात के विभिन्न प्रांतों से बहुत बड़ी संख्या में हरिभक्त आ आए थे। वर्ताल में धारा तालाब के पूर्वकर्म को सेवा चल रही थी। अक्षरानुद स्वामी को देखेंखें में तालाब का पुनर्निर्माण हो रहा था। एकादशी के उस्तव के बाद सब अपने-अपने निवास स्थान पर जा कर सो गये।
सुबह जाने से पहले उन सबको स्वभाव में तीर्थसूत्र गोमती ने दर्शन दिया। साथ में रक्षिती तथा द्वारिकानाथ के भी दर्शन हुए। सभी उठते ही एक-दूसरे को अपने-अपने स्वभाव की बातें कहने लगे। श्रीहरि को जब इस घटना का पता चला तो वे मुस्कुराने लगे।

और सभा में सभी को कहने लगे, ‘आज द्वारिकाधीश प्रसन्न होकर अपने परिवार के साथ यहाँ बस गये हैं। लक्ष्मीनारायणदेव रक्षिती - द्वारिकाधीश का ही स्वभाव हैं। धारु तालाब में आज हम तीर्थ-रूप गोमती नदी का आह्वान करेंगे। चलो, एक साथ मिलकर धारु तालाब में खुदाई का काम समाप्त करें, पूर्णिमा तक हमें यह काम पूर्ण करना है। क्योंकि हम द्वारिका की गोमती को यहाँ लाना चाहते हैं’।

संत-हरिभक्त एकजुट होकर सुबह से शाम तक सेवा करने लगे। महाराज तालाब के किनारे कुस्ती पर बैठकर सभी को प्रोत्साहित करते रहते। कभी-कभी वे स्वयं कीचड़ से भरे टोकरे अपने सिर पर उठाते, इस प्रकार बड़े-बड़े धनवान हरिभक्तों ने भी सेवा-कार्य में श्रमदान दिया। पूर्णिमा के अगले दिन खुदाई का तमाम सेवा कार्य संपन्न हो गया।

संध्या ठल चुकी थी, श्रीहरि दो ईटों पर खड़े रहकर मेहनत करनेवाले हरिभक्तों को आशीर्वाद दे रहे थे। जब छाणी के वर्णकर भक्त तेजाभाई एवं उनके हरिजन जाति के हरिभक्तों का मण्डल आशीर्वाद के लिए आ पहुँचा। सभी ने झुककर बन्दन किया। उन्होंने शरीर की परवाह न करते हुए सेवा की थी। इसीलिए प्रसन्न होकर श्रीहरि पूछने लगे, ‘में तुम लोगों को क्या दूं?’

तब तेजा भक्त ने सभी को ओर से कहा: ‘प्रभु! आप तो गरीब निवाज हैं। हम पर अखंड प्रसन्न रहिएगा, आपकी मूर्ति का मुझे निरंतर स्मरण रहे, आपका भजन निरंतर कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि आप जिन ईटों पर खड़े हैं वे ही ईट आप हमें देने की कृपा करें। जिससे हम मंदिर बनाकर इन पर मूर्ति रखकर आपका पूजन, कथा-कौतूह और भजन कर सकें।’

‘तथास्तु’ कहकर श्रीहरि ने दोनों ईटें तेजा भक्त को दे दीं। साथ में अपना जलपात्र और एक बरतन प्रसादी के रूप में दे दिया।
आज भी छाँणी के मंदिर में इन तीनों चीज़ें विद्यमान हैं। श्रीहरि ने उस छुआछूत के कठोर युग में हरिजनों को मंदिर-दर्शन, पूजा, सेवा, तथा कथावार्ता का अविकार दिया था। जाति-पौँच के भेद भुलाकर श्रीहरि ने क्रांतिदर्शी कार्य करके लोक दृढ़ में स्थान प्राप्त किया था।

श्रीहरि ने चैत्री पूर्णिमा का उत्सव वर्तमान में किया। एक दिन पूजा आदि से निवृत्त होकर साधु, ब्रह्माचारी, पर्यटक एवं हरिभक्तों का संघ लेकर महाराज कीर्तन करते हुए तालाब पर पहुँचे।

यहाँ भीमभाई को आज देते हुए कहा, ‘आप गैरी (तीकम) लेकर इस जगह जरा गहरा खोदो, यहाँ से द्वारिका की साक्षात् गोमती नदी बहने लगेगी।’

भीमभाई ने उसी प्रकार किया तो केवल पाँच झटके ही लगे थे कि वहाँ से शीतल जल की धारा फूट पड़ी। अनेक हरिभक्तों को उस जलधारा में पवित्र नदी गोमती का साक्षात् देखने में दर्शन हुआ। अखूद जलधारि एवं पवित्र तीर्थ का जल मिलने के कारण सभी के हृदय में आनन्द-विभोर हो उठे।

श्रीहरि ने कहा, ‘जहाँ रुकमणी एवं द्वारिकाधीश हों, वहाँ गोमती आकर निवास करती हैं। आज से वर्तमान की यात्रा और गोमती में स्नान, द्वारिका की यात्रा के तुल्य माना जाएगा।’ सबके चेहरे पर प्रसनन्ता छा गई। श्रीहरि ने वैकुण्ठानंद वर्णी तथा वासुदेवानंद वर्णी को आदेश दिया, ‘आप भी हरिभक्तों को हाथ और छाती पर तप मुद्रा देने का आरंभ करें।’

फिर स्मिर्यों को तप प्रकार देने के लिए उन्होंने दादा दादे की पुत्री यमुना को आदेश दिया। इस प्रकार सबसे इस स्थान पर तप मुद्रा लेने लगे। शाम धलने तक पूरा तालाब पानी से लबालब भर गया। आज से धारा तलाब का नाम गोमती तालाब हो गया।

सभी संत-भक्त इससे स्नान करके कृतार्थ हुए।

वर्तमान में कुछ दिन रहकर श्रीहरि गढ़पुर की ओर चल दिए।

सौराष्ट्र के मंदिर

वर्तमान, अहमदाबाद और कंच्छ-भुज में सूंदर मंदिरों के निर्माण हो चुके थे। सौराष्ट्र के काठी हरिभक्तों के मन में भी सौराष्ट्र में मंदिर निर्माण
की चाहत बढ़ रही थी। वे सभी पंचाला में एकत्र होकर चर्चा कर रहे थे कि गुरुराज एवं कन्हा हरिभक्त धन्यभावी हैं परंतु श्रीहरि हमारे सौराष्ट्र को ही भूल गए, ऐसा क्यों निकाय होगा? चलो, हम सब उन्हीं के सामने हमारी बात रखे। सभी मिलकर श्रीहरि के पास आ पहुंचे, कहा ‘महाराज! आपने गुरुराज और कन्हा में तो मंदिर-निर्माण किया, परंतु सौराष्ट्र को बिलकुल ही भूल गये! आप हमारे प्रदेश में भी सुंदर मंदिर बनवाएं।’

श्रीहरि ने कहा, ‘मैं आप लोगों से दूर तो हूँ नहीं। गढ़ड़ा, लोया, पंचाला आदि स्थानों में अधिकतम निवास करता हूँ, यहाँ तो मेरी उपस्थिति हमेशा रहती है। परंतु गुरुराज और कन्हा में बिना उल्लभ के हम नहीं जा पाते। इसलिए यहाँ मंदिर-निर्माण किए हैं। परंतु यदि आप लोगों की भावना है तो हम सौराष्ट्र में भी ऐसे ही भव्य मंदिरों का निर्माण करेंगे।’

सर्वप्रथम श्रीहरि ने गढ़पुर में घेरा नदी के किनारे, एक टीले के ऊपर मंदिर निर्माण का संकल्प किया। श्रीहरि हरजी ठकर के साथ उस टिले पर पधारे एवं स्थान तथा नक्शा इस्तमाल किया। परंतु वह भूमि दादाखाचर एवं जीवाखाचर की साझदारी में थी। जीवाखाचर भूमि देने के लिए तैयार नहीं थे। इसी कारण श्रीहरि उदास होकर सारंगपुर में मंदिर बनवाने का संकल्प किया।

उससे पहले कृष्णान, वांकिया, कोटड़ा, बोटाड, लोया, पंचाला, ँशीङ्गवाड़, कारियाणी और कुंडल में उन्होंने जगह देखी, परंतु उनका मन कहाँ नहीं माना।

परंतु सारंगपुर में जीवाखाचर ने श्रीहरि का भावपूर्ण स्वागत किया। तथा अपने गाँव में मंदिर के लिए जहाँ भी, जितनी भी भूमि चाहिए श्रीहरि के चरणों में अर्पण करने का बादा किया। श्रीहरि ने सारंगपुर के हरिभक्तों को तथा समग्र ग्रामवासियों को गाँव के चबूतरे पर एकत्र किया और उनकी सम्मति माँगी। सभी ने प्रसन्न होकर कहा, ‘महाराज! हमारे ऐसे सदभाव कहाँ कि हमारे गाँव में मंदिर हो! यदि मंदिर बनता है तो हम हर प्रकार से सहायता करेंगे। कृपया यहाँ मंदिर बनाने का प्रारंभ करें।’

12. इसी टीले के ऊपर बाद में श्रीहरि महाराज ने आरस पठार का तीन शिखरों वाला भव्य मंदिर बनवाकर उसमें अक्षर सहित पुरश्चित्त की प्रतिष्ठा की।
श्रीहरि ने पूछा, ‘मंदिर के लिए यहाँ पत्थर की आवश्यकता पड़ेगी, उसके लिए किसकी अनुमति लेनी पड़ेगी?’ जीवाखाचर कहने लगे, ‘महाराज! इसके लिए बरवाला के जैन सेठ घेलाशाह की अनुमति लेनी पड़ेगी। वे सेठ सजन, परमसहिष्णु एवं उदवर हैं।’ इतना कहकर वे बरवाला के सेठ घेलाशाह को सारंगपुर बुला लाये। श्रीहरि ने सेठजी से पूछा, ‘हम यहाँ मंदिर निर्माण कर रहे हैं, इसमें आप पत्थर आदि सामग्री से हमारी सहायता करूँगे?’

सेठ प्रसन्न होकर कहने लगे, ‘जी महाराज! इस गाँव के आसपास 25 गाँवों पर मेंा अधिकार है, यहाँ मंदिर का निर्माण हो इससे बढ़ाए और बात क्या हो सकती है? मंदिर के लिए जितने भी पत्थर चाहिए, मैं दिलवा दूंगा।

इसके उपरांत पत्थर ढोने के लिए जितनी भी बैलगाड़ियों की आवश्यकता होगी मैं आपकी सेवा में उपस्थित कर दूंगा।’

श्रीहरि ने प्रसन्न होकर घेलाशाह को बार-बार आशीर्वाद दिया और कहा, ‘वाह, इनका नाम भले ही घेला (पागल) है, पर सेठ हैं तो बड़े सजन एवं समझदार।’ इस प्रकार सारंगपुर में मंदिर बनवाने का निश्चय हुआ।

जब यह खबर गढ़पुर में दादाखाचर, जीवुआ और लावुआ को हुई, वे पूरे परिवार तथा हरिभक्तों के साथ सारंगपुर आ पहुँचे।

दादाखाचर और उनकी दोनों बहनों ने अनजल का त्यागकर दिया था, वे अत्यंत व्यथित हुए थे। विनम्रतापूर्वक उन्होंने श्रीहरि के चरणों में निवेदन किया, ‘पृथु! हमारे अपराधों की श्रमा कीजिए और कोई सजा अथवा प्रायश्चित्त बताइये। परंतु आपने तो पहले ही कहा था कि गढ़पुर में हैं, मैं गढ़पुर का हूं, तो आप वहीं पर मंदिर बनाकर निरंतर हमारे गाँव में निवास कीजिए। हम अपना सर्वस्व आपको समर्पित करने के लिए तैयार हैं।’ यह सुनकर श्रीहरि की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर गढ़पुर में मंदिर निर्माण का वचन दे दिया।

अब श्रीहरि मंदिर के लिए गढ़पुर पढ़ारेंगे, यह जानकर जीवाखाचर अत्यंत दुखी हुए। उनको आश्रय देते हुए श्रीहरि कहने लगे, ‘दरबार! आप दुखी क्यों होते हैं? सारंगपुर में तो प्रतापी परमेश्वर का परम धाम निर्माण होगा। हम अपने धामस्वरूप अश्रुरहा और मुक्तों के साथ यहाँ
नूतन मंदिरों का प्रारंभ

बिराजेंगे। इस प्रकार यह ऐसा विविधता धाम बनेगा कि हजारों हरिभक्त संघ लेकर यहाँ यात्रा के लिए आएँगे।’ जीवाधार यह सुनकर शान्त हुए। उन्होंने खिन हंदे से श्रीहरि को गद्दूपुर जाने की अनुमति दी।

यहाँ दादाखाँचर ने अपना पूरा दरबारगढ़ ताम्रपत्र के लेख के साथ श्रीहरि को कृपालुर्तिकार कर दिया।

तथा पांचुबा के निवासियों के दक्षिणी द्वारवाले कमरे गिरा दिये गये। विद्वान ज्योतिषी द्वारा दिया गया मुहूर्त के अनुसार संवत् 1881 (सन् 1825) व्येश शुक्ला एकादशी, शानिवार को गद्दूपुर में शिखरब्रज मंदिर का शिलान्यास किया गया। हरिभक्तों ने बहुत बड़ी संख्या में आर्थिक योगदान दिया। दादाखाँचर को उसी सभा में समाधि लग गई। वहाँ उन्होंने भरती में से निकलता हुआ तीन शिखरीय स्वर्ण-मंदिर देखा। उन्होंने प्रार्थना की, ‘हे महाराज, आप इस मंदिर को हमेशा के लिए यहाँ पर रखें।’

श्रीहरि ने कहने लगे, ‘ऐसा तो नहीं हो सकता, भक्तराज। सभी को सेवा-लाभ देने के लिए मंदिर की प्रवृत्ति प्रारंभ की है।’ फिर उन्होंने आदेश दिया कि ‘प्रतिदिन सुबह-शाम प्रत्येक संत तथा हरिभक्त थोला नदी पर स्नान करके लौटें तथा किनारे से एक-एक पत्थर लेकर मंदिर की नींव में डालना आरंभ करें।’

इस प्रकार के सेवा यज्ञ का आरंभ स्वर्ण श्रीहरि ने अपने सेवा कार्य से किया। वे भी अपने सिर पर पत्थर उठाकर दादाखाँचर के दरबार भुवन तक लाने लगे।

[ 25 ]

नूतन मंदिरों का प्रारंभ

जन्माष्टमी के उत्सव पर जूनागढ़ से झीनाभाई तथा थोलेरा से पूंजाभाई दर्शन के लिए पंचरे थे। दोनों ने श्रीहरि को प्रार्थना करके विनती की, ‘हे महाराज, हमारे जूनागढ़ में भी शिखरब्रज मंदिर बनाकर हमें कृपार्थ दें, यही हमारी प्रार्थना है।’

इस प्रकरण में आपात्रों सन्वत् 1882 के प्रसंग दिये गये हैं।

13. उस जार पर पांचुबी महाराज ने संवत् 1972 (सन् 1916) में तीन शिखरों चाला मंदिर बनवाकर उसमें अक्षयपुरुषोत्तम एवं धर्मकुल की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की।
श्रीहरि ने उनके भक्तिभाव को देखकर आदेश दिया कि, ‘जाइए, आप तेयारी प्रारंभ करें। हम मूर्तिप्रतिष्ठा के लिए अवश्य आएंगे।’ उन्होंने ब्रह्मानंद स्वामी से कहा कि ‘आप जूनागढ़ जाइए, और मंदिर-निर्माण का प्रारंभ कीजिए। अद्भुतानंदजी और निष्कुलानंदजी धोले जा रहे जा रहे और वहाँ मंदिर निर्माण का आरंभ करेंगे। मूर्ति स्थापन के लिए उचित तेयारी हो जाएं, तब हमें खबर देना। हम स्वयं आकर मूर्तिप्रतिष्ठा करेंगे।’

इस प्रकार श्रीहरि ने दो नूतन मंदिरों का प्रारंभ किया।

शून्यों को द्विजत्व दिया

वर्तमान में कार्तिक पूर्णिमा का उत्सव संपन्न हुआ। वहाँ बड़ोदरा के राजा स्वाजीराव गायकवाड़ द्वितीय के मंत्री नारायण नाना एक निमंत्रण-पत्र लेकर श्रीहरि के पास उपस्थित हुए। महाराजा ने श्रीहरि को अपने शहर में पधारने का निमंत्रण दिया था। श्रीहरि ने वह पत्र पढ़कर मुक्तानंद स्वामी को दिया। उस समय नारायण ने स्वामी से कहा, ‘स्वामीजी, गत वर्ष आपने बड़ोदा में चालू गई। क्या आप श्रीहरि को लेकर बड़ोदा आएंगे। परंतु किसी कारणवशात् वह संभव नहीं हो पाए। इसलिए में स्वयं निमंत्रण-पत्र के साथ उपस्थित हुआ हूँ। कुप्रया आप भी श्रीहरि के चरणों में प्रार्थना करें कि वे बड़ोदा अवश्य पधारें।’

श्रीहरि ने निमंत्रण का स्वीकार किया। निश्चित तिथि पर वे बड़ोदा जा गए। शहर के बहार छाणी गाँव की सीमा पर हरिभक्तों के संघ ने उनका भव्य स्वागत किया। एक दो नीचे श्रीहरि के लिए आसन रखा गया था। सभी क्रमबद्ध आकर उनके चरण में दूरी दूर लगे और 'पुष्पमाला अर्पण करने' लगे।

इस छाणी गाँव के तेजाभाई वणकर आदि हरिजन जाति के भक्त गोपालानंद स्वामी के द्वारा स्वामिनारायण संप्रदाय के द्वारा जुड़े थे। निमंत्रण जाति के कहलानेवाले ये भक्त ब्राह्मणों से भी अधिक उद्देश्य से नियम धर्म का तथा सदाचार का पालन करते थे। नियमित पूजा-पाठ करना, तिलक-टीका लगाना, कथावाचः एवं भजन-कौर्तना उनका नियम्य कर था। ब्राह्मण आदि उच्चवर्ग के घर में भी यदि अनजल शुद्ध नहीं किया होता तो वे उन्हें प्रहरण नहीं करते थे। कुछ लोग ऐसे नियमों के कारण उन लोगों को
हैंसी उड़ते थे। परंतु आज श्रीहरि स्वयं आनेवाले थे इसलिए उन्होंने गाँव के छोटे-बड़े सभी को निमंत्रित किया था। परंतु ब्राह्मण, महाराज, पटेल, अमीन आदि उच्च वर्ण के लोगों ने तथा गाँव के रहने-साइ बाबा वैरागियों ने ढिबोरा पिटायाया था कि ‘गाँव के उच्च वर्ण के कोई लोग स्वामिनारायण के दर्शन के लिए नहीं जाना।’

जब ऐसा ही हुआ तब श्रीहरि के सामने गाँव के केवल वणकर हरिजन उपस्थित हुए थे। यह देखकर श्रीहरि मार्किक सिमट करके कहते लगे, ‘क्या इस गाँव में कोई ब्राह्मण या वैष्णव नहीं है? यदि हैं तो वे क्यों नहीं आएं?’

तेजा भक्त ने गाँव का पूर्वपुढ़ पूर्ण दृष्टिकोण कह सुनाया। श्रीहरि ने कहा, ‘आपको दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण जैसी विद्वान और उनके जैसे सदृश आप लोगों में आपसी ब्राह्मण भी लजित हो जाएं ऐसा तुम लोगों का विश्व आचरण होगा।’ श्रीहरि के आशीर्वाद से सभी प्रसन्न हुए। महाराज ने कहा था कि यदि आप निम्नजाति के कहलाने पर भी आपका आचार शुद्ध रखेंगे एवं भगवान का आश्रय रखेंगे तो आपको बहुत आत्मबल प्राप्त होगा।

श्रीहरि के आशीर्वाद कुछ सालों में ही सफल होने लगे। इन हरिजनों ने ऐसे विश्व आचार का पालन किया कि गाँव के ब्राह्मण, वैष्णव आदि लजित हो गए।

शिक्षापत्री

कार्तिक कृष्णा तुलीया का दिन था। महाराजा सयाजीराव के युवराज श्रीहरि के स्वागत के लिए छायी गाँव तक आ पहुँचे थे। सुंदर अलंकृत हाथी पर स्वर्ण के ओहदे में श्रीहरि को बिराजमान किया। पायदल, हयदल, ऊठनी दल, गजदल आदि की चतुरंगी सेना के साथ ठोल, नगड़े, शहनाई, नोबत आदि बायों के साथ श्रीहरि की सवारी बड़ोदरानगर में नगरायण के रूप में चलने लगी। सड़कों के दोनों और खिड़कियों, छतों, झोरों पर चारों और श्रीहरि के दर्शन के लिए पूरा मानव-महासागर उमड़ रहा था। मस्तुब्रान्ग के देवघर में नगरायण का विराम हुआ। महाराजा सयाजीराव ने
श्रीहरि के चरणार्धबंद की पूजा करके उनको वस्त्रभूषण समर्पित किये। श्रीहरि ने यहाँ तीन दिन तक निवास किया। महाराजा सयाजीराव के अनुरूप उपदेश दिया। सारे नगर में श्रीहरि की दिव्य आभा फैल चुकी थी। यहाँ से वे वरताल पढ़े।

वरताल में कार्तिक कृष्णा एकादशी उन्होंने प्रतिदिन संध्या काल प्रागोजी द्वारा श्रीमद्भगवत के दशम, पंचम एवं एकादश स्कंद की कथा प्रारंभ करवाई। तथा नित्य प्रातःकाल उन्होंने स्वयं नारायण महल में एकात
में विराजमान होकर ‘शिक्षापत्री’ की रचना का आरम्भ किया। संवत् 1882 (सन् 1826) में वसंतपंचमी के दिन शिक्षापत्री की पूर्णता हुई। इस छोटे से ग्रंथ में उन्होंने धर्म, ज्ञान, वैज्ञानिक भवित के साथ पूजापद्धति, संत के लक्षण, शास्त्र की महिमा, सेवा तथा सदाचार रूप गुणों की स्थापना आदि विषयों पर अपने अनुभवपूर्ण निर्णय स्पष्ट किये। साथ-साथ गुहस्थ, विश्वा तथा सध्वा स्त्री, श्रद्धालु तथा क्यागीवृद्ध आदि के नियम भी स्पष्ट किये।

‘शिक्षापत्री’ ग्रंथ लेकर श्रीहरि सभामंडप में पद्धोर और सभी विद्वान संतों को कहा, ‘इस ग्रंथ से भूल निकलनेवाले को मैं आज थाल की प्रसादी दूंगा।’ इतना कहकर वे मुख्यालय ले। विद्वान संतों ने इस ग्रंथ का सूक्ष्म निरीक्षण किया परन्तु कहीं भी भूल या अपूर्णता नहीं दिखाई दी। तत्पश्चात् संबिधान जन आदि संयों हस्तक्षेप वाले साधुओं के द्वारा इस ग्रंथ की कई प्रतियाँ तैयार की गई। उनमें से प्रत्येक मुख्य संत को एक-एक प्रति दी गई तथा एक एक गाँव में भी एक-एक प्रति भेजी गई। श्रीहरि का आदेश था की इस ग्रंथ के पांच आदेशों का प्रतिदिन पठन अथवा श्रवण करें अथवा इस ग्रंथ का प्रतिदिन पूजन करें।

धोलेरा में मूर्तिप्रतिष्ठा

श्रीहरि ने वरताल में वसंतपंचमी का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। उस अवसर पर मछियाव एवं अहमदाबाद के हरिभक्तों ने आग्रहपूर्वक प्रार्थना की, ‘हे महाराज! इस वर्ष फूलदोल का उत्सव हमारे नगर में मनाने की कृपा कीजिए’ प्रेमवच श्रीहरि ने तुरंत सम्मान दे दी।

वे डभात तथा महेंदराबाद होकर एकसाथ दो स्वरूप धारण करके मछियाव तथा अहमदाबाद जा पहुँचे। इस वर्ष उन्होंने दोनों गाँवों में पुष्पदोलोत्सव मनाया, इस प्रकार दोनों गाँव के भक्तों के मनोरथ पूर्ण किये। मछियाव से निकलकर उन्होंने अपना दूसरा रूप गाँव की सीमा पर हि अदृश्य कर दिया। तथा अहमदाबाद से निकलकर भाल प्रदेश के कमियाला गाँव में हरिनवमी उत्सव मनाया। यहाँ धोलेरा गाँव से अदभुतांद्र स्वामी तथा फूलाभाई ने आकर श्रीहरि के चरणों में निवेदन किया कि हे प्रभु, मंदिर निर्माण का कार्य पूर्ण हो चुका है, अब आपके आगमन की प्रतीक्षा है। आप
मूर्ति-प्रतिष्ठा के लिए आने की कृपा करें। थोड़ा-बहुत काम जो शेष है, वह बाद में पूरा हो सकता है।'

श्रीहरि धोलेरा आ पहुँचे। प्रतिष्ठा का वेशाख शुक्ला त्रयोदशी का मुहूर्त नारायण जोशी के द्वारा निकाला गया था। निष्कुलान्द स्वामी तथा अद्भुतान्द स्वामी की प्रार्थना सुनकर श्रीहरि ने वहाँ पर एक मास के लिए निवास किया। प्रतिष्ठा-महोत्सव में आने के लिए, यहाँ से गाँव-गाँव निमंत्रण-पत्रिकाएं भेजी गईं। गढ़पुर से राधाकृष्ण की मूर्तियाँ आ गईं थीं।

शुभ मुहूर्त में बड़ी उन मूर्तियों को मदनमोहन नाम से बैठिक विधिपूर्वक प्रतिष्ठित की। श्रीहरि ने इस अवसर पर ब्रह्मणों को दान दिया।

प्रतिष्ठा-महोत्सव में रघुवीरजी एवं अरोध्यप्रसादजी को श्रीहरि ने शिक्षाप्रद के एक-एक प्रति देकर उनको शिक्षास्त्री के अनुसार आचरण करने का आदेश दिया। दादाखाचर को भी उन्होंने एक प्रति देकर प्रसन्नता व्यक्त की। दूसरे दिन नृसिंह चतुरदशी का उपवास करके श्रीहरि ने वहाँ से गढ़पुर जाने के लिए प्रस्थान किया।

[ 26 ]

महत्त्वों की नियुक्ति

वर्तमान में संवत् 1883 (सन् 1826) में प्रबोधनी एकादशी का उत्सव करके श्रीहरि गढ़पुर पढ़ा थे। एक दिन श्रीहरि ने सभा में हो रहे कोलाहल को शांत करके कहा, ‘आप सब सुनिए, हमने जो मंदिर बनवाये हैं, उन मन्दिरों में महत्त्वों की नियुक्ति करनी है।’ वे विभूतपूर्वक मन्दिरों को देखभाल करेंगे। मैंने मन्दिरों के महत्त्वों के विषय में जो निर्णय किया है वह सुनाता हूँ।

‘वर्तमान के मंदिर में वैष्णवान्द स्वामी, गढ़पुर के मंदिर में विरस्वातन्द स्वामी, अहमदाबाद के मंदिर में सर्वज्ञान्द स्वामी, धोलेरा के मंदिर में अद्भुतान्द स्वामी महंगे के रूप में रहेंगे।’ इतना कहकर प्रत्येक सदस्यों को नियुक्ति के प्रतीकरूप पुष्पमाला पहनाई। तत्पश्चात् ब्रह्मान्द स्वामी से कहने लगे, ‘आप मूली में मंदिर का निर्माण करना तथा वहाँ तद्पुरान्द स्वामी की महत्त्वपूर्ण पर नियुक्ति करना।’ तब ब्रह्मान्द स्वामी ने कहा, ‘महाराज! इस प्रकार में आपाती संवत् 1883 के प्रसंग दिये गये हैं।
‘हमारा अक्षरधाम’

जूनागढ़ के मंदिर के लिए आप सोच-विचार कर महत्त की नियुक्ति कीजिए। क्योंकि वहाँ मुस्लिमों का शासन है और शिवपंथी नागर ब्राह्मणों का बड़ा वर्चस्व है। जिससे महन्तों का बारबार परिवर्तन न करना पड़े।

श्रीहरि ने कहा, ‘जूनागढ़ के मंदिर में तो हमने ऐसे महन्त की नियुक्ति की है कि परिवर्तन का कोई प्रसन ही उपस्थित नहीं होगा।’

इस बात को कुछ दिन बीत गए। चैत्री पूर्णिमा का उत्सव श्रीहरि ने गांव में किया। आज कि सभा में उन्होंने संबोधन करते हुए कहा, ‘आज हम जूनागढ़ के मंदिर के महत्त की नियुक्ति कर देंगे हैं। भादरा बाले निर्गुणानन्दजी को बुलाई।’ उसी समय निर्गुणानन्दजी अर्थात् गुणातीतानन्द स्वामी स्वयं वहाँ आ पहुँचे। श्रीहरि अपने आसन से खड़े हो गये, अपने कंठ से सभी पुष्पमालाएँ निकाली और गुणातीतानन्दजी के कंठ में पहनाकर बोले, ‘ये हमारे जूनागढ़ के महन्त हैं।’ इतना कहकर अपने वस्त्र दिये, उनके सिर पर पगड़ी रखकर उनको बार-बार आशीर्वाद दिया।

‘हमारा अक्षरधाम’

इस प्रसंग के बाद उन्होंने सभा में बैठे हुए कुर्जी दंग को बुलाकर कहा: ‘दवेजी! रामानंद स्वामी जब भुज से पीपलाणा पठारे थे, तब आप वहाँ शृंखल समाचार देने के लिए लोज आये थे। उस समय सभीने प्रसन्न होकर आपको कुछ न कुछ पुरस्कार दिया था। परन्तु उस समय मेरे पास कुछ नहीं था। अप को वे दिन याद है? मैंने उस दिन आपसे कहा था कि मैं तुम्हें अक्षरधाम दौँगा... लोजिए, यह गुणातीतानन्द स्वामी हमारा अक्षरधाम है। वह आपको और सोरट (सौराष्ट्र) के हरिभक्तों के लिए दे रहा हूँ।’

तत्पश्चात् ये गुणातीतानन्द स्वामी से कहने लगे, ‘जूनागढ़ के मंदिर में साथ कितने संत रखें? पाँच या दस साधु रखें?’ लेकिन अन्त में वहाँ दो सो साधु रखने का निर्णय हुआ। सोरट के हरिभक्तों को सम्बोधित करते हुए श्रीहरि ने कहा, ‘हमने आप सबके लिए अपना सर्वस्व दिया है, इसलिए गुणातीतानन्द स्वामी की महिमा समझकर उनकी इच्छानुसार जो उनकी सेवा करेगा, उसके सी जन्मों की तो क्या हजारों जन्म की कसर इसी एक जन्म में निकाल देंगे।’
सौराष्ट्र के हरिभक्त आज बहुत प्रसन्न हुए।

‘शिक्षापत्री’ का उल्लंघन मत करना

श्रीहरि अहमदाबाद जिले के बरवाला गाँव में पढ़ारे थे। एक प्रेमी भक्त ने उनको भावपूर्वक निमंत्रण दिया था। अपना घर छोटा होने के कारण उसने श्रीहरि को अपने बड़े भाई के मकान की पौरी में ठहराया। पलंग बिछाकर उसने विश्लेषपूर्वक कहा: ‘महाराज आप यहाँ विराजिए, मैं सीधा सामान की सामग्री लेकर अभी आया।’

बाजार से उसे कुछ देर हो गई। इतने में उसका बड़ा भाई अपने घर की पौरी पर आ पहुँचा। उसे श्रीहरि की कोई पहचान नहीं थी न तो उसके हदय में उनकी महिमा थी। उल्टा संतमान के प्रति तिरस्कार का भाव था। उसने ऊँची आवाज़ में कहा, ‘आप कौन हैं?’ श्रीहरि ने उसे शात्र भाव से समझाने की कोशिश की। परन्तु वह तो तुककर लगा, ‘यह जगह मेरी है, बिना मेरी संमति के भेरे छोटा भाई तो क्या मेरी पत्नी भी किसीको यहाँ नहीं ठहरा सकती, आप यहाँ से अभी निकल जाएं।’

‘हाँ भाई, हम जा रहे हैं।’ कहते हुए श्रीहरि संत-हरिभक्तों के साथ वहाँ से निकल गये। गाँव के बहार आकर वे साथी संतों के प्रति कहने लगे, ‘देखा? हमने स्वयं शिक्षापत्री लिखी और हमने ही उस ग्रंथ का आदेश मान्य नहीं रखा, 14 तो दु:ख भोगना पड़ा। शिक्षापत्री की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए। अब यहाँ से नाबंधा गाँव की ओर जाएं।’ उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया ही था कि वह हरिभक्त सीधा सामग्री लेकर घर पहुँचा। ज्यों ही उसको सारी जानकारी मिली कि वह दौड़ता हुआ श्रीहरि के पास आ पहुँचा। क्षमा याचना की। पूरा सामान उनके के चरणों में रख दिया। श्रीहरि ने उसे आशीर्वाद देकर शांत किया और फिर कभी आने का वचन दिया। वे संघ के साथ नाबंधा की ओर चल दिये। इस घटना से सभी को शिक्षापत्री की महत्ता समझ में आ गई।

इस प्रकरण में आषाढ़ संवत 1884 के प्रसंग दिये गये हैं।
14. शिक्षापत्री श्लोक : 33
संतों को जूते पहनाये

हरिमवामी के उत्सव के लिए श्रीहरि वर्ताल जा रहे थे। दोपहर के
समय भोलाद गाँव की सीमा पर वे संतों के साथ विश्राम ले रहे थे। चैत्र
मास की जलाने वाली गर्मी के कारण एक संत कुएं से अपने उपवस्त्र गिले
करके आ पहुंचे। चारों ओर पानी छिड़ककर संतपत्थ भूमि को ठंडा किया।
पेड़ के नीचे, ऊपर तथा चारों ओर उपवस्त्र बाँधकर मंडप तैयार कर दिया।
इस प्रकार ठंडक में श्रीहरि के विश्राम की व्यवस्था हो गई।

श्रीहरि की आंखों में नींद नहीं थी। वे सोचने लगे, 'ऐसी भयंकर धूप
में हमारे संत नंगे पैर चलते हैं, कुछ संतों के पैर में तो फंसोऽ भी पड़ गये
हैं, उनके पैर कितने जलते होंगे!' उनका हदय द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त
संतों को इकट्ठा किया और कहने लगे, 'आज से आप सभी जूते पहनना
आरम्भ कर दो। आप का स्वास्थ्य यदि ठीक रहेगा तो समाज की सेवा भी
ठीक ढंग से कर पाएँगे।' भक्तवत्सल श्रीहरि की कृपा से संतों के हदय भी
द्रवित हो गए।

चारण गाँव के रास्ते पर बुटेबी का मंदिर आया। पास में एक पेड़ के
नीचे सभा करके श्रीहरि ने जोराभाई से कहा, 'कुछ खाने को है? हमें भूख
लगी है।' जोराभाई ने कहा, 'महाराज, कमियाँठ के गढ़बी (कच्चि)
खोमराज की फली की दी हुई दो सेर शाककर है, कहिए तो वह ले आऊँ।'

श्रीहरि ने कहा शाककर मंगवाई। उसमें से अंजलि भरकर सुरा खाचर
को दी। उन्होंने महाराज का ऐश्वर्य देखने के विचार से मजाक के स्वर में
कहा, 'महाराज! आप संघ के सभी सदस्यों को एक-एक अंजलि भर कर
शाककर दीजिए।'

श्रीहरि ने कहा, 'ठीक है!' उन्होंने दो सेर शाककर से सभीको एक-एक
अंजलि प्रसाद दिया, फिर भी उतनी ही शाककर बच रही।

जूनागढ़ के मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा

वर्ताल में हरिमवामी का उत्सव करके श्रीहरि गढ़वा पढ़ाये। यहाँ
मन्दिर-निर्माण का कार्य शीघ्रता से पूर्ण करने का आदेश दिया।
अब वे जूनागढ़ के मंदिर में प्रतिष्ठा के लिए पधारे।

संवत् 1884 (सन् 1828) वैशाख कृष्ण द्वितीया को श्रीहरि ने जूनागढ़ में रणछोड़-शिकम, राधारमणदेव और सिद्धेशर महादेव की मूर्ति को प्रतिष्ठित की। इस अवसर पर जूनागढ़ के नवाब ने कहा, ‘हे महाराज! आपने यहाँ इतना भव्य मंदिर बनवाया है, तो आप स्वयं यहाँ रहिए अथवा आपके जैसे फकीर को यहाँ रखिए।’ श्रीहरि ने स्मित करते हुए गुणातीतान्तर स्वामी कि ओर संकेत किया। और कहा, ‘ये हे हमारे जैसे फकीर। इन साधु के रूप में हम स्वयं यहाँ पर विद्यमान रहेंगे। इसीलिए, आप उनके दर्शन, सेवा तथा सत्संग का लाभ लेते रहना।’

स्वामिनारायणिया

श्रीहरि द्वारा निर्मित मंदिरों में महत्ता तथा उनके सहयोगी संत निरुक्त हो गए थे। प्रत्येक मंदिर के प्रमुख देवताओं के नाम से अब विशिष्ट प्रकार के भेद-प्रभेद प्रकट होने लगे। जैसे वड़ताल के संतों को लक्ष्मीनारायणिया, अहमदाबाद के संतों को नरसारायणिया, तथा गढ़पुर के संतों को वासुदेविया आदि शब्दों से सम्बोधन होने लगा। साधुओं में हो रहे ऐसे भेद-प्रभेद को सुनकर श्रीहरि ने सभी को एकत्र किया। फिर कहने लगे: ‘वासुदेविया उस ओर बैठें, नरसारायणिया वहाँ बैठें, लक्ष्मीनारायणिया हैं दूर बैठें।’ जब सभी ने अलग-अलग स्थान लिया, तब वे कहने लगे, ‘अब जो स्वामिनारायणिया हों वे मेरे पास आकर बैठें!’ यह सुनते ही सभा में सनाटा पसर गया। पक्षेंद्र रखनेवाले साधु लजित होकर क्षमा याँचना करने लगे। संतों के लिए सभी प्रबृत्तियों का लक्ष्य केवल श्रीहरि ही होने चाहिए ऐसा निश्चय करके सभी भेद भूलकर सेवा में जुड़ गए।

गढ़पुर में मूर्तिप्रतिष्ठा

गढ़पुर में श्रीहरि ने अपनी ही आकृति वाली मूर्ति बनाने के लिए नारायणजी शिल्पी को कहा था। उन्होंने कहा ‘महाराज! आप यदि प्रत्यक्ष इस प्रकरण में आपाती संवत् 1885 के प्रसंग दिये गये हैं।’
भावनगर में पधरावनी

रूप में सामने बैठे तो मूर्ति के सारे अंग एवं आकृति आपके समान रही जा सकती है।’ श्रीहरि उनको विनंती को मान्य रखकर वासुदेवनारायण के कमरे की पवित्र सिद्धि में पलंग पर बिहारियों जीभाई को सहयोग देने लगे। वे श्रीहरि के दर्शन करते हुए पठार से उसी आकार का शिल्प निर्माण करने लगे। श्रीहरि उनकी कला से प्रसन्न होकर कभी-कभी थाल-प्रसादी देकर उन्हें प्रोत्साहित किया करते।

चाहुरस के दिन थे, श्रीहरि गढ़पुर में ही बिहारियों थे। जन्माष्टमी के उत्सव के बाद भाद्रपद का आरम्भ हुआ। एक दिन श्रीहरि वासुदेवनारायण के कमरे के बाहर बिहारियों का उस समय निष्कुलान्द स्थान मे प्रणाम करते हुए कहा, ‘महाराज! अब मन्दिर पूर्ण हो चुका है, मूर्तियाँ भी तैयार हैं। मूर्ति-प्रतिष्ठा का मुहूर्त निक्षित करने की कृपा करें।’ श्रीहरि ने तुरंत गोपालन्द स्थान से मुहूर्त निकलवाया। आधिन शुक्ल दादशी का मुहूर्त निक्षित हुआ। गाँव-गाँव और नगर-नगर निमंत्रण पत्रिका भेजी गई। उमेरें दे बैदिक ध्वनन रोकना के लिए निमंत्रित किया गया।

संवत 1885 (सन 1829) आधिन शुक्ल दादशी के दिन बैदिक ध्वनन पूर्वक धूमधाम से गोपीनाथजी एवं राधिकाजी की मूर्तियाँ की प्रतिष्ठा की गई। श्रीहरि ने आज दादाखाचर से कहा, ‘गोपीनाथजी की जो मूर्ति मेरा ही स्वरूप है। में इस मूर्ति में सहकर तुम्हारी सेवाओं को स्वीकार करूँगा।’ इतना कहकर श्रीहरि ने मूर्ति को अपने हाथ से लगाया और उसके बिरात पर अपने दोनों हाथ रखे। तत्पश्चात् वासुदेवनारायण की मूर्ति को प्राण-प्रतिष्ठा की। पवित्र की ओर धर्म-भक्ति की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। पूर्व दिशा की देहरी में सूर्यनारायण, श्रीकृष्ण, बलराम तथा राधाजी की मूर्तियाँ की स्थापना की। आज दादाखाचर का मनोरथ पूर्ण हुआ।

भावनगर में पधरावनी

वर्तमान में पुष्पदोलोत्सव के बाद विचरण करते हुए श्रीहरि कारियाणी, रोहिशाला और बरतेज बिहार भावनगर पधरे।

यहाँ सत्संग-समुदाय ने उनका अपूर्व धूमधाम से स्वागत किया। कई परिवारों में श्रीहरि की पधरावनी हुई। संध्या सभा में सूरत के सत्संगी दर्शन
आत्माराम श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचे। वे बड़ी लगन और प्रेमभाव से सुन्दर दगली (छोटा कुर्ता) बनाकर लाये थे। वह कुर्ता भव्य बेलबूटों एवं केशों से सुशोभित था। श्रीहरि ने यह देखकर बहुत प्रशंसा की। इस वस्त्र पर हुई कारोगरी को देखकर लोग आकर्षण चिह्नित रह जाते।

इस कुर्ते की की स्वर्णवत की बाट धीरे-धीरे सारे भावनगर में फैल गई। भावनगर के महाराजा विजयसिंहजी ने यह सुना, तो उन्होंने किसी हरिपंथी को भेजकर वह कुर्ता मंगाया। उन्होंने अपने राज्य के दिव्यपत्रों को दिखाकर कहा, ‘यदि आप लोग मेरे लिए ऐसा सुन्दर कुर्ता बना दें तो मैं सो स्वर्णपुड़एँ पुरस्कार के रूप में दूँगा।’ परन्तु दिव्यपत्रों का कहा, ‘महाराज, इसी सुन्दर बेलबूटों से तैयार जरी का कुर्ता बनाना हमारे लिए समध्य नहीं है।’ महाराजा ने अपने आदमियों को आत्माराम दर्शी के पास भेजा कि आप हमारे महाराजा के लिए इतना ही सुन्दर कुर्ता बना दो। इनके रूप आप जो मांगोगे, दिया जाएगा।

आत्माराम ने विनम्रता पूर्वक कहा, ‘आप महाराजा को कहना कि मेरे कई दिनों के प्रयत्न के बाद यह कुर्ता तैयार हुआ है। इसमें केवल कारोगरी ही नहीं है, किन्तु मेरे अंतःकरण से प्रवाहित प्रेम के धारों से इसकी सिलाई हुई है और मुझे श्रेष्ठ इनाम के रूप में श्रीहरि की प्रसन्नता और अश्रुदाम की प्राप्ति के आशीर्वाद मिल चुके हैं। कुर्ता तो केवल उनकी प्रेरणा और उनके प्रति हमारे प्रेमभाव के कारण यह कुर्ता बना है। ऐसा कुर्ता और किसी के लिए नहीं बन सकता।’ महाराजा इसका रहस्य समझ गये। निराशा होकर उन्होंने वह कुर्ता श्रीहरि को भिजवा दिया।

दूसरे दिन महाराजा विजयसिंहजी ने अपने राजभुवन में श्रीहरि की पधरावनी की। पूजन तथा पुष्पहार से श्रीहरि को सम्मानित किया। श्रीहरि ने कहा, ‘हमने आपके राज्य के गढ़ड़ा गाँव में मंदिर बनाकर गोपीनाथदेव की प्रतिष्ठा की है। इस मंदिर और भविष्य में दूसरे भी मंदिर बनें, वहाँ राज्य की ओर से पूर्ण सहायता मिलती रहे तथा निर्विवेक रूप से कार्य पूर्ण हो ऐसा प्रबन्ध करने के लिए हमारा निवेदन है।’

महाराजा बड़े बिवेकी थे। उन्होंने कहा, ‘महाराज! आपके ही आशीर्वाद से मैं राज्यशासन कर रहा हूँ, आपके ही प्रताप से मेरा राज्य
गुण ग्रहण की प्रेरणा

दादाखाचर के राजभवन में संतों की भोजन पंक्ति लगी हुई थी। श्रीहरि संतों को विविध सामग्री परस परस रहे थे। जैसे ही मंत्रोच्चार अथवा जयकार के साथ भोजन शुरू ही हो रहा था कि अचानक दो संत विचरण करके उस स्थान पर आ पहुँचे। उनको परोसने के लिए कोई सामग्री नहीं बची थी।

श्रीहरि ने संतों से कहा, ‘रक्षित, अब भोजन करना शुरू मत कीजिए।’ फिर आगे के संतों से कहा, ‘आप दोनों अपने-अपने पात्र लेकर संतों की भोजन पंक्ति में भिक्षा के लिए निकलो। जो भी मिले प्रसादियों के रूप में धारण कर लेना।’ दोनों परमहंसों ने बैठा तुर्य हुए संतों के सामने अपना पात्र लेकर धूप मना शुरू किया। सभी ने अपने पात्र से अच्छी वस्तुएँ दीं। कुछ ही पत्तों में दोनों के पात्र पकवान से भर गए।

श्रीहरि ने यह देखकर कहा, ‘देखा आपने, इन्होंने सभी के सामने झुककर जो कुछ मिला, ग्रहण कर लिया तो पूरा पात्र श्रेष्ठ पकवानों से भर गया। उसी तरह आप सब अहंकार का ल्याग करके विन्दुपार्वतक सभी संतों-भक्तों से यदि एक भी अच्छा गुण ग्रहण करोगे, तो आप का जीवन भी सदृस्यों से भर जाएगा।’

श्रवणी पूर्णिा के दिन श्रीहरि ने गुणातितानन्द स्वामी की महिमा समझाते हुए मुक्तानन्द स्वामी से कहा, ‘गुणातितानन्दजी को विशेषता अच्छे
आसन के कारण नहीं हैं। उनकी श्रेष्ठता तो अनादिद्वं है। वे तो हमारे
रहने का धाम हैं। हमारी मूर्ति को तीनों अवस्था में धारण करके रखते हैं।’
इस तरह उनके स्वरूप की मूर्तिरूप में पहचान करवाई।

अपनी छाप बनवाई

संवत् 1885 (सन् 1829) का चारुमास गढ़पुर में ही संपन हुआ।
अनकूट-उत्सव के लिए श्रीहरि सारंगपुर पढ़ाए। तत्प्रार्थ, सुंदरियाणा,
धंधुका और खसता आकर नदी के किनारे राजी-निवास किया। चारों ओर
मध्यपार्श्व का सनाटा पसरा हुआ था। अचानक एक शेर श्रीहरि के ढेरे से
केवल बीस कदम दूर आ पहुँचा और जोर से गर्जना की। हड़बड़ाहट में
भगुजी ने बंदूक उठाई। परंतु श्रीहरि अचानक उठ बैठे और शेर के सामने
हाँक लगाई। उस हाँक का ब्रह्मांडभेदी घोष हुआ। भय के मारे शेर तुरंत
जंगल की ओर भाग निकला। भगुजी आश्रयात्तदेखते रह गए।

दूसरे दिन कमियाळ, वरसड़ तथा सौंजीवाड़ा होकर श्रीहरि वर्ताल
पढ़ाए। यहाँ प्रबोधिनी एकादशी का उत्सव किया, जो उनका अंतिम उत्सव
था। दूसरे दिन श्रीहरि ने जूनागढ़ के नारायणजी सुतार से कहा, ‘हमारी मूर्ति
में आपका मन तो लग गया है न! तो अब हमारे स्वरूप की ऐसी सुदर
छाप बनाए कि सारे संतों-हरिभक्तों को वह मूर्ति स्वाभाविक ही समरण में
आ जाए और वे बड़े ‘भाव से उसका दर्शन-पूजन करें’

नारायणजी भाई ने कहा: ‘महाराज! आपकी कृपा से ऐसा ही होगा, मैं
धातु के साँचे में ऐसी ही छाप तराशकर रामनवमी के दिन गढ़दा ले
आऊँगा।’ यह सुनकर श्रीहरि बहुत अनुभव हुए, परंतु उस समय उनकी बाणी
का रहस्य कोई समझ नहीं पाया।

तत्प्रार्थ श्रीहरि ने उपस्थित भक्तों को शिक्षाप्रणाली-पालन के विषय में
प्रेरणा दी, ‘शिक्षाप्रणी भले ही छोटा-सा ग्रंथ है परंतु संसार की सारी
समस्याओं का तथा मन की सारी शक्तियों का निवारण करने में समर्थ है। मैं
यहाँ हरिकृष्ण की मूर्ति में निरंतर विराज्मान हूँ।’ इतना कहकर वे कुछ रथ
द्वारा संघ के साथ गढ़पुर जाने के लिए निकले।
इस प्रकरण में आपाठि संवत् 1886 के प्रसंग दिये गये हैं।
गवर्नर जॉन माल्कम से भेंट

संवत् 1886 (सन् 1830) पौष शुक्ला दिवस की श्रीहरि ने बीमारी ग्राहण की। प्रत्येक पदार्थ से अपनी वृत्ति समेटकर उन्होंने उदासी ग्रहण कर ली। खाना-पीना कम कर दिया। शरीर कृपा होने लगा। हरिभक्तों को चित्ता होने लगी। श्रीहरि ने गढ़पुर से बाहर निकलना बिल्कुल बंद कर दिया। वे दिनभर अक्षरकूटीर में आराम करते रहते। तीस संत दिन में और तीस संत रात्रि के समय उनकी सेवा में लगे रहते। भगुजी, मूलुजी, सुरा खाचर आदि कई हरिभक्त भी श्रीहरि की सेवा में सावधान रहते थे।

उस समय भारत के बाइसराय पद पर विलियम बेंटिक का शासन चल रहा था और मुम्बई राज्य के गवर्नर पद पर सर जॉन माल्कम थे। वे कभी-कभी सौराष्ट्र आते-जाते रहते थे। बिसाप हैबर और अन्य अंग्रेज अधिकारियों से उन्होंने श्रीहरि के विषय में बहुत सी जानकारी एकत्र की थी। श्रीहरि के द्वारा हुए धर्म-सुधारणा और समाज-सुधारणा के कार्य की झाँकी पाकर वे अत्यंत प्रभावित थे। उन्होंने सौराष्ट्र में आकर श्रीहरि से मुलाकात लेने की इच्छा प्रकट की।
माघ माह में गवर्नर के सचिव ने पत्र लिखकर श्रीहरि को सूचित किया
कि नामदास गवर्नर सर ज्ञौन मालकम आपसे मिलना चाहते हैं। परंतु श्रीहरि
का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिर रहा था। उन्होंने माघ की कृष्णा त्रयोदशी के दिन
पत्र में लिखवाया कि नादुरत स्वास्थ्य के कारण आपको मिलना संभव नहीं
है। प्रत्युत्तर में गवर्नर के सचिव धामस विलियमसन ने श्रीहरि के स्वास्थ्य में
सुधार होने की आशा व्यक्त की।
परंतु फाल्गुन मास में फिर एकबार सौराष्ट्र के कामचलाकू पोलिटिकल
एजन्ट दी. एन. ब्लेन ने दि. 22-2-1830 को दूसरा नववेदन पत्र भेजा, जिसमें
श्रीहरि को संबंधित करते हुए लिखा था कि गवर्नर सहब अपने स्टाफ के
साथ सौराष्ट्र में उपस्थित हैं, वे आपसे भेंट करना चाहते हैं। यदि संभव हो
तो आप उनसे अवश्य मिलें। आप आ सकेंगे या नहीं इस विषय में कृपया
अपनी जानकारी दीजिएगा।
गवर्नर तथा मिशर भेजने पर श्रीहरि ने अपनी बीमारी को
दर्ज किया था तथा अपनी योग्यता से स्वस्थता धारण करने के सरकार के
संदेशवाहक को अपनी स्वीकृति दे दी। फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन
श्रीहरि ने रथ में बिराजमान होकर संतों-भक्तों के साथ राजकोट के लिए
प्रस्थान किया।
दि. 26-2-1830, का दिन धन्य हुआ। आज सुबह राजकोट के दीवान
रोड पर र्जिथ पोलिटिकल एजन्ट के बंगले पर श्रीहरि और गवर्नर सर ज्ञौन
मालकम की भेंट हुई। उस मुलाकात के समय गवर्नर के सचिव धामस
विलियमसन, पोलिटिकल एजन्ट मिशर के साथ अन्य अंग्रेज अधिकारी
उपस्थित रहे। श्रीहरि के साथ अर्योध्याप्राचार्य रामचन्द्र, राम जी, मुकुन्द
ब्रह्मचारी, श्रीकृष्ण ध्वजार्जी, मुकुन्दन स्वामी, सुधार, सोमला
खाचर, दादा खाचर, लाखा ठाकर, हीरजी ठाकर, देवा भक्त और भीमभाई आदि
उपस्थित थे।
गवर्नर की ओर से लशकरी दलों ने बंदूक की आवाजों के साथ बेंद बजाकर
श्रीहरि को शाही सलामी दी। बंगले के भीतर प्रवेश करते ही गवर्नर ने श्रीहरि
का गर्भजोशी से स्वागत किया। अपने दीवान-खंड में बिठाकर गवर्नर ने
श्रीहरि का पुष्पमालाकें अर्पण की, इन की महक से बातचीत सुंगधित किया,
शाला और बाहरकर सत्कार किया और कुर्सी पर बिराजमान किया।
वार्तालाप करते हुए गवर्नर ने स्वामिनारायण सम्प्रदाय के सिद्धांतों की चर्चा की। श्रीहरि ने उनके प्रश्नों का समाधान करते कुछ प्रेक्षक उपदेश भी दिया। अन्त में गवर्नर ने पूछा, ‘आप हमारे राज्य में धर्म-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। परंतु राज्य की ओर से आपको कोई कष्ट तो नहीं है?’

श्रीहरि ने कहा, ‘हमें कोई खास कष्ट तो नहीं है, परंतु आप लोग गौरी एवं ब्राह्मणों के साथ सामान्य प्रजा की दुखों से रक्षा कीजिएगा।’

तब गवर्नर ने पूछा, ‘हमारी सरकार सती-प्रश्न एवं बाल-हत्या बंद करा रही है, इस विषय में आपके क्या विचार हैं?’

श्रीहरि ने कहा, ‘स्त्रियों को बलात्-सती होने के लिए मजबूर करना तो हत्या ही है। यदि कोई स्त्री स्वयं भी तैयार हुए तो हमें उसको बचाना चाहिए। क्योंकि वह तो आत्महत्या है। हमारा अभिप्राय यह है कि किसी तीर्थ अथवा पति के महात्मा के आधार पर आत्महत्या तो कभी मान्य नहीं हो सकती। पति के मरने पर परमेश्वर की पतिभाव से सेवा-पूजा करनी चाहिए। किसी भी स्थिति में आत्महत्या निषिद्ध है तथा दृढ़ में दुःखकर की जानेवाली बाल-हत्या भी हमें स्वीकार नहीं है। हमने घर-घर जाकर इस विषय पर लोगों को जागृत किया है।’ यह सुनकर गवर्नर अत्यंत भ्रमरित हुए।

उन्होंने कहा, ‘नारायण स्वामी! आपने मुझे बहुत अच्छी सलाह दी।’

अन्त में उन्होंने श्रीहरि से सम्प्रदाय के सिद्धांतों की पुस्तक माँगी और कहा, ‘हमारा और हमारे शत्रुओं का भी कल्याण कीजिएगा।’ श्रीहरि ने प्रसन्न होकर इस मुमुश्कु गवर्नर को आशीर्वाद के साथ शिक्षाप्रदेश ग्रंथ की एक प्रति उपहार के रूप में दी।

दो घंटे तक परामर्श होता रहा। बिदा लेते हुए श्रीहरि के समक्ष गवर्नर और उनके साथी अधिकारियों ने अपनी हंट उतारकर झूठकर अभिवादन किया और बंगले के द्वार तक आकर आदर व्यक्त किया। राजकोट में अपने निवास स्थान पर दोपहर का भोजन लेकर वे गद्दर्प के लिए बिदा हुए। वहाँ पहुँचते ही कुछ ही दिनों के बाद श्रीहरि ने पुनः बीमारी प्रहार कर ली।

अन्तिम दिन...

इस वर्ष पुष्पदोलतस्व के लिए वे वर्तमान नहीं पथरे। श्रीहरि की
अनुपस्थिति से हरिभक्तों के मन में विषय छा गया। उत्सव के बाद सारे संत-
हरिभक्त सीधे श्रीहरि के दर्शन करने के लिए गढ़ड़ा चले।

यहाँ श्रीहरि ने मुकुन्दानंद वर्णी को भेजकर रामप्रतापराई, 
अयोध्याप्रसादजी, रघुवरजी, मुकुन्दानंद स्वामी, गोपालानंद स्वामी, ब्रह्मानंद 
स्वामी, नित्यानंद स्वामी, शुकानंद स्वामी, निष्कुलानंद स्वामी, आनन्दानंद 
स्वामी, परमचेतन्यानंद स्वामी, भाग्याननंद स्वामी आदि संतों को 
बुलवाया। अखण्डानंदजी, वासुदेवानंदजी आदि व्रजचारियों को, भगुजी, 
मूलुजी, रतनजी, मियाँजी आदि पार्श्वों को, दादाखाचर, सूराखाचर, 
सीमालखाचर, जीवाखाचर आदि दरबारों को, दीनानाथ भड्ड, मध्यामाभड्ड, 
बेचर भड्ड, तुलसी दवे, प्रागजी दवे, आदि ग्रामजों को, लाख ठट्ट, दीर्घजी 
ठट्ट, पूंजा सेट, लवजी सेट, भगा सेट, मूलजी सेट आदि सदर्खस्थों को 
एवं जीवुण, लाड़ुआ आदि महिलाओं को बुलाकर श्रीहरि ने सभा का 
आयोजन किया।

श्रीहरि धीरे से सभी को संबोधित करते हुए, गंभीरतापूर्वक कहते लगे,
‘आप सब मुझे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर मानते हैं। मुझे हमेशा प्रसन्न रखने 
की चेष्टा भी करते हैं, तो आप मेरी कुछ बातें सुनिए और समझने का 
प्रयास कीजिए। मैंने अपनी इच्छा से इस मूल्यों में शरीर धारण किया है।
इस धर्मी पर मेरा कार्य संपन्न हुआ है। मंदिर, शास्त्र, साधु आदि के द्वारा 
मैंने विशुद्ध सम्प्रदाय की स्थापना कर दी है। मेरा कार्य अब पूर्ण हुआ है।
इसलिए अब में अन्तर्धान होना चाहिए हूँ। मेरे स्वधाम जाने पर आप दुःखी 
मत होना। क्योंकि यह तो मूल्यों है, यह शरीर तो नाशक्त है, इसलिए 
आप मुझे वचन दीजिए कि मेरे पीछे कहीं भी, कभी भी आत्महत्या नहीं 
करेंगे। मैं अब मेरे अक्षराठाम में वापस जाएंगा।’

श्रीहरि के शब्द सुनते ही सबके सिर पर विजली गिरी। कुछ भक्तों के 
शरीर काँपने लगे, कुछ लोग बेहोश हो गए, कई भक्त दहाड़े मारकर रोने 
लगे, भक्तों और संतों से नेत्रों से औपयुक्त की धारा निरंतर बहने लगी।

श्रीहरि सब पर करणात्मक करते रहे। उन्होंने सभी के बाराबार 
आशान्दया दिया, प्रेरणा और धीरज दी। परन्तु वे अपने निश्चय से तन्क भी 
विचलित नहीं हुए। उन्होंने अक्षराठाम जाने का निश्चय कर ही लिया था।
श्रीहरि ने आँषध हो या भोजन, अल्यंत कम लिया करते थे। कभी-कभी बाजरे की राज या खिचड़ी ग्रहण करते। वे जब वन-विचरण से पधारे थे वैसा ही कृष्ण शरीर देखकर संतों की आँखें भर जाती थी। एक दिन भायात्मानन्द स्वामी उनको ऊलाहना देते हुए कहने लगे, ‘आपने मरने का यह क्या दांग रचा है? न खाते हैं, न पीते है। अरे आप आन्द मनाते रहिए और हमें भी आन्दमग रखिए। आप हमें छोड़क चले जाएंगे तो हम भी आपके पीछे मर मिलेंगे।’ कुछ साल पहले जैसे पीताम्बर नाम के एक ब्राह्मण गुरु के मरने पर उनके सतासंग शिष्य उनके पीछे चिता पर चढ़कर जल मरे थे, उसी तरह हम भी मर जाएंगे। आपके पीछे रक्त की नदियां बहेंगी। इसलिए कृपया आप धाम में जाने का संकल्प छोड़ दीजिए।’

श्रीहरि ने कहा, ‘पीताम्बर तो सामान्य आदमी था। यदि मैं सर्वपूर्वों भगवान हूँ तो किसी की नकसीर तक नहीं फूटने दूंगा। यदि किसी का आयुष्य पूरा भी हुआ होगा तो आयुष्य बढ़ाकर भी, उसको जिंदा रखवा।’ कुछ देर रक्तकर वे फिर कहने लगे, ‘किसी ने भी यदि मेरे पीछे विष खाकर, फाँसी डालकर अथवा किसी भी तरह आत्महत्या की तो वह मेरे धाम को प्राप्त नहीं होगा। वह तो गुस्तरही और बचनरही माना जाएगा। जिसने भी मेरे पीछे आत्महत्या का संकल्प किया हो, वह मेरे चरणस्पर्श करके प्रतिज्ञा करें कि हम ऐसा कदम कभी नहीं उठाएंगे।’ उन्होंने यह प्रतिज्ञा अनेक संतों-हरिभक्तों को करवाई।

येपेठ महिं ने का प्रांरंभ हुआ। श्रीहरि की बीमारी भयानक रूप ग्रहण कर रही थी। श्रीहरि का शरीर केवल उनके योग-ऐश्वर्य से ही टीका हुआ था। एक दिन उन्होंने अपने साखा एवं संप्रदाय के दिग्गज संतकचि ब्रह्मानन्दजी को बुलाकर कहा, ‘आप जूनागढ़ जाइए और भादरा वाले निरुणान्दजी (गुणातीतान्द स्वामी) को यहाँ आने का आदेश दीजिए।’ ब्रह्मान्द स्वामी इस आदेश का रहस्य समझ गये, अब श्रीहरि किसी के रोकने पर रुकने लगे ही। वे तो जाना नहीं चाहते थे परंतु श्रीहरि की आज्ञा के पास उनका कोई चारा नहीं था। उन्होंने अपने साथ जूनागढ़ आने-वाले
सहजानंद चरित्र

संतों को दुःखी हदय से कहा, ‘आप आज श्रीहरि के आकंट दर्शन कर ले, क्योंकि यह अवसर फिर नहीं मिलेगा। मैं देख रहा हूँ कि श्रीहरि अब ज्यादा दिन हमारे बीच नहीं रहेगे।’ वे दुःखी हदय से जूनागढ़ जाने के लिए निकल पड़े।

थोड़ी ही दूरी पर उनका नाम जिसने ने काट दिया, अपशुक्ल होने के कारण ब्रह्मानंद स्वामी व्याकुल हो गए। उन्होंने सोते हुए संतों से कहा, ‘मेरे पैर रह-रहकर रुक रहे हैं, आप लोगों में से यदि किसी को भी श्रीहरि की अन्तिम लौटा के दर्शन के लिए यहाँ रुकना है तो वे रुक जाएं। मुझे तो जाने की आजाद नहीं है, इसलिए मुझे तो जाना ही पड़ेगा।’

यह सुनकर कुछ संत पुनः गद्घपुर लौट गए। ब्रह्मानंद स्वामी किन्ह हदय से चलकर ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी के दिन जूनागढ़ पहुँच गए।

‘हमें स्वस्थ होना है’

ब्रह्मानंद स्वामी के जाते ही गद्घपुर की शृण्यता और भी बढ़ गई। वे हमेशा मजाक करते हुए वातावरण को हलका-फुलका रखते थे। श्रीहरि को हैंसते-हैंसते दिन बीत जाता था। परंतु उनके जाते ही श्रीहरि गर्ही उदासीनता में सोते रहे। सिर पर चहर ओढ़कर वे बिस्तर पर लेटे रहते। न किसी के साथ मिलना-जुलना तथा न तो कुछ खाना-पीना। नित्यनंद स्वामी उस दिन चाँदी के कटोरे में बाज़े की राख लेकर आये। उन्होंने तीन-चार बार श्रीहरि को पुकारा। परंतु वे सिर तक लम्बी चहर तानकर सोते ही रहे।

नित्यनंद स्वामी शोकातुर होकर धड़म से भूमि पर गिर गए और सिर पछाड़कर रोने लगे। राख की कटोरी दूर जा पड़ी। श्रीहरि तुरन्त चउदय हटाकर बिस्तर में उठ बैठे और बोले, ‘आप लोग क्यों रो रहे हैं? क्या कोई मर गया है?’

नित्यनंद स्वामी ने कहा, ‘आप न खाते हैं, न पीते हैं, उदासीन पड़े रहते हैं, तो क्या हम लोग उत्सव मनाएँगे?’

करुणामय श्रीहरि भक्तों के दुःख से द्रवित हो गए। उन्होंने कहा, ‘जाईए, पानी गर्म कीजिए, हम स्नान के लिए आते हैं और नेवेद्ध तेज़ रूपरेखा करने के लिए कहें। हमें भोजन करना है। आज हम बहुत ही स्वस्थ हैं।’
काकाभाई को दर्शन

श्रीहरि स्वस्थ हो चूके हैं यह जानकर पूरे दरबार भुवन में आनंद की लहर फैल गई। श्रीहरि स्नान किया, क्षेत्र वस्त्र धारण किये, वे चेहरे पर प्रसननता दिखाने लगे। ब्रह्माचारी द्वारा लाए गए थाल से उन्होंने भोजन भी ग्रहण किया। संध्या के समय वे सभा में पढ़ते तब दादाखाने ने झालर-नगाड़े बजवाकर आनंद व्यक्त किया। दरबार भुवन के सदस्यों के द्वारा शक्ति बोँटी गई। सन्त्र दिन तथा उद्यास से महोत्सव आनंदित बन गया।

परंतु रात होते ही श्रीहरि ने पुनः वैसी ही उदासी और बीमारी ग्रहण कर ली। वे स्वतःः अंतर्लीन हो गए। संतों और भक्तों के मन में एक अनजान सा खूफ़ फैलने लगा।

काकाभाई को दर्शन

श्रीहरि की कृष्ण काया से अब अधिक बीमारी सहन करना संभव नहीं था। उनके गिरते हुए स्वास्थ्य को लेकर सभी हरिभक्त चित्तामगन रहते थे। गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि राज्यों से कई हरिभक्त कृष्ण समाचार जानने के लिये गढ़पुर आ रहे थे।

उन दिनों श्रीहरि के पास खबर भेजी गई कि रोजका गाँव के भक्तराज काकाभाई मुतुयश्वा पर पड़े श्रीहरि का स्मरण कर रहे हैं। काकाभाई को संकेत मिल गया था कि अब शरीर रहनेवाला नहीं है। उन्होंने तुरंत एक थोड़ी तथा चाँदी की तस्तरी श्रीहरि के चरणों में उपहार के रूप में भेजी और निवेदन करते हुए पत्र लिखा, ‘हे जीवनप्रण! भक्तवस्त्र प्रभु! यदि संभव हो तो आप मुझे दर्शन देने के लिये घर पठारों की कृपा करें और यदि संभव न हो तो अन्त समय पर मुझे लेने के लिये तो अवश्य पढ़ाइएगा, सेवक को दृष्टि में रखिएगा।’

पत्र पढ़ते ही श्रीहरि ने देखा कि काकाभाई के आदमी ने दंडवत्त करते हुए थोड़ी और चाँदी की तस्तरी समर्पित की गई। उन्होंने उसी पल कुछ निर्णय ले लिया और बीमारी को दरिकनार करके रोजका गाँव चलने के लिए संतों-भक्तों को आदेश दे दिया। वे कहने लगे, ‘हम स्वस्थ हैं, और आज ही रोजका जाना चाहते हैं। आप सभी को भी मेरे साथ चलना है।’ रथ में विराजमान होकर श्रीहरि संघ के साथ रोजका पढ़ते। काकाभाई की
आँखों से प्रेमाभ्यंत्र बहने लगे। श्रीहरि ने उनके घर दो दिन तक निवास किया। काकाभाई के परिवारजनें ने सभी की बहुत सेवा की।

जब वे गढ़पुर के लिए बिटा हो रहे थे तब काकाभाई ने प्रार्थना करते हुए कहा: ‘हे महाराज! मुझे तो मेरी यह हाद-चाम की देह अब नरककुण्ड-सी लग रही है, अत: मुझे उससे छुड़ाकर कृपया अपने अक्षरधाम में ले चलें।’ श्रीहरि ने आशीर्वाद दिया, ‘काकाभाई, आप चिंता मत कीजिए। कुछ ही दिनों में आपको अक्षरधाम की प्राप्ति होगी।’

उस समय उनकी पत्नी ने अपनी स्वर्ण की चूड़ड़ों श्रीहरि को अर्पण किया। काकाभाई ने कहा, ‘प्रभु, इसमें से जो भी द्रव्य मिले, आप मेरी ओर से आप संतों एवं पार्श्वों को भोजन की सेवा में उपयोग करना।’ श्रीहरि गढ़ड़ा पथरे। उनको पूर्ववाट विचरण करते देखकर सभी बहुत खुश हुए। काकाभाई का शरीर कुछ दिनों के बाद छूट गया। इस ओर गढ़पुर में श्रीहरि ने पुनः बीमारी ग्रहण कर ली।

‘मीठा खाला केम विसरं?’

संवत् 1886, ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी का दिन था। भ्राह्मान्द स्वामी गढ़पुर से निकलकर सुबह 7.00 बजे के बाद जूनागढ़ के मंदिर में पहुँचे थे। उस समय गुणातीतिन्द स्वामी प्रदक्षिणा कर रहे थे। अचानक मंदिर के शिखर का एक मुख्य हिस्सा टूटकर उनके पैर के पास आ गिरा। यह भारी अपशकुन था। उनके दिल में किसी अमंगल की शंका होने लगी। उसी वक्त भ्राह्मान्द स्वामी ने मंदिर में प्रवेश किया। वे खिनहदय और उदास थे। उन्होंने गुणातीतान्द स्वामी को सारी बातों से अवगत किया और कहा, ‘आप इसी समय गढ़ड़ा के लिए प्रस्थान करें।’ श्रीहरि ने आपको शीघ्र बुलाया है। वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।’ गुणातीतान्द स्वामी फोरन अपने निवास पर गए। खूबी से अपना झोला उठाया और एक साथी संत को लेकर पैदल ही गढ़ड़ा की ओर चल पड़े। एक दिन में चालास कोस चलकर वे केवल दो दिन में प्रात:काल गढ़ड़ा जा पहुँचे।

सारे गाँव में एक भयानक शूष्कावकाश दिख रहा था। अक्षरकोटी में सुरा खाचर पहरा दे रहे थे। स्वामी के आते ही उन्होंने श्रीहरि को खबर दी.
कि जूनागढ़ से गुणातीतानंद स्वामी आ पहुँचे हैं। यह सुनते ही श्रीहरि तुरन्त पलंग पर उठ बैठे और कहने लगे, ‘स्वामी आये? उनको शीघ्र ही यहाँ बुलाओ।’ स्वामी ने भीतर आते ही दण्डवत्प्रणाम किया। श्रीहरि की निर्विन्यास काया देखते ही आँखों से अश्चिंत हो बहने लगी। श्रीहरि ने उनको पलंग के पाँच से बैठने का संकेत किया। वे उनके चरणों में बैठ गये। बड़े प्रेमभाव से स्वामी की ओर देखते हुए श्रीहरि कहते लगे,

‘मीठा ब्हाला केम वीरुपूरु, मानुं तमथी बांथेल तन हो,
तरस्याने जेम पाणीं दुआलुकु, भूखाने भोजन हो।’

अर्थात् है प्रिय आतमन! मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ? मेरा शरीर तुम से बंधा हुआ है। प्यासे को जैसे पानी और भूखे को जैसे भोजन प्रिय लगता है, वैसे ही तुम मुझे प्यारे हो।

श्रीहरि को वास्तव में विश्राम की आवश्यकता थी। वे इतने से कष्ट में भी श्रमित महसूस कर रहे थे। ‘महाराज, अब आप विश्राम करें।’ स्वामी ने कहा, और वे उठकर बाहर आ गये। श्रीहरि फिर एकबार उदास होकर सो गए। तीन दिन तक वे प्रतिदिन अपने थाल से गुणातीतानंद स्वामी को प्रसाद
देकर प्रसन्नता व्यक्त करते रहते थे। उनकी प्रसन्नता देखकर सभी का मन शांत होने लगा।

स्वधाम गमन

परंतु ज्येष्ठ शुक्ला दशमी का मंगलवार धरती के लिए अमगल सिद्ध हुआ। आज प्रातःकाल श्रीहरि जागे, मुकुन्द वर्णिन् ने उनको स्नान करवाया। सभीके आग्रह के कारण वे भोजन के लिए बिराजमान हुए। परंतु उनसे कुछ खाया नहीं गया। अक्षकुटीर के बाहर आकर उन्होंने उपस्थित भक्तों को दर्शन दिया, गऊ और स्वर्ण-मुद्राओं का दान दिया। तथा अक्षकुटीर में आकर तुरंत गोपालान्द स्वामी को बुलाया। उनके सामने श्रीहरि फिर एकबार इस लोक से वापस लौटने की अपनी इच्छा व्यक्त करने लगे।

तत्पश्चात्, गुणातिस्यान्ने स्वामी को बुलाकर एकात्म में कहने लगे, ‘स्वामी! इस लोक में रहने की हमारी इच्छा नहीं है। आप हमारे स्वरूप की यथार्थ महिमा का विस्तार करते रहना। सभी को अवतार और अवतारी का भेद समझाना। सारे सत्संगियों को परमात्मा के आन्दोलन में सराबोर करते रहना।

सोरठ (जूनागढ) प्रदेश से हमारे हरिभक्तों को हम अपनी मूर्ति का सुख नहीं दे पाए, वह अब तुम्हारे द्वारा देंगे।’ इतना कहकर श्रीहरि अन्नलान हो गए।

कुछ देर के बाद उन्होंने मुकुन्द वर्णिन् से चौथी मंगवाई। श्रीहरि उस पर स्वस्तिक आसन लगाकर स्वरूप का ध्यान करने लगे। स्थिर अत्सृष्टि करके उन्होंने अचानक कहा, ‘जय स्वामिनारायण।’ और स्वतंत्रतापूर्वक एकाएक देह का त्याग कर दिया। संतों-हरिभक्तों के सिर पर मानो बिजली गिरी। श्रीहरि के स्वधाम यथार्थ उसके के समाचार से संत, हरिभक्त, पुरुष-स्त्रियाँ आदि आक्रान्त करने लगे। चारों और भीषण कर्प्षांत चल रहा था। किसी भी सुध नहीं थी कि किसी को भी शांत करने का प्रयास करें। गोपालान्द स्वामी ने आकर सभी को सांतन्ना दी।

गंगा तथा उमन्तगंगा के जल से श्रीहरि के शरीर को स्नान करवाया गया। पीतम्म, श्रेष्ठ कुत्रा, दुपुष्टा और श्रेष्ठ पपड़ी तथा आभूषणों के साथ पुष्पमालाएँ अर्पण की गई। केरुपुकल चन्दन से तिलक के बीच कुंकुम का टोका लगाया गया। वरिष्ठ संतों ने श्रीहरि की आरती उतारी। उनके शरीर
‘में तो आप में अखंड रहा हूँ’

को एक सुंदर पालकी में विराजमान करके सभी अबीर, गुलाल, कंकुम तथा पुष्प, उड़ाते हुए धुन-भजन तथा नाम स्मरण के साथ लक्ष्मीबाईँ में आ पहुँचे। यहाँ उनका चन्द्रनकाठ की चित्र पर ब्राह्मणों के द्वारा शारीरिक विधि अग्नि संस्कार किया गया। श्रीफल, ची, जू, तिल आदि से हवन किया जाने लगा। आज इसी प्रसादी स्थल पर एक सुंदर स्मृति मंदिर विद्यमान है।

‘में तो आप में अखंड रहा हूँ’

अग्नि की शिखाएँ विराट शून्य की ओर उठ रही थी। सबके दिलों में रौंदता छाई हुई थी। हर कोई शून्यनस्त होकर श्रीहर की स्मृतियों में खोये रहते थे। दादाखाचर यहीं संचरकर रो रहे थे कि ‘अब नित्य नवीन सुख कौन देगा?’ उनको बड़े-बड़े संतों-भक्तों ने सातवना दी। पर उनके दिल को सुकुन नहीं मिल रहा था। गोपालनाद ख्वामी ने कहा, ‘भक्तराज, यदि आप ध्येय नहीं रखेंगे तो किसी को भी ध्येय नहीं रहेगा, इसलिए आप उस प्राणादि स्थल पर जाएं जहाँ श्रीहर हमेशा विराजमान होकर कथामूत का आस्वाद कराते थे।’ दादाखाचर जैसे ही वहाँ गए तो स्तव्र्द रह गए। श्रीहर सभा के बीच बैठे हैं, केंद्र में गुलाब के पुष्पों की माला सुशोभित है और सभाजनों से बात कर रहे थे। दादाखाचर हाथ जोड़कर खड़े रह गए। तभी श्रीहर की आवाज सुनाई दी, ‘अरे, तुम रोते हो किस लिए? तुम मुझे यद करना, में उसी वक्त तुम्हें दर्शन दूंगा।’ इतना कहकर अपने केंद्र से गुलाब की माला निकालकर दादाखाचर को आशीर्वाद के रूप में दे दी। दादाखाचर का मन उसी दिन शांत हो गया।

संध्या के बाद गहन अध्यात्म का साम्राज्य फैल चुका था। गुणातीतान्द स्वामी श्रीवादि ने निरूप होकर हाथ में तुम्बी लिए हुए लक्ष्मीबाईँ में वापस लौट रहे थे। रास्ते में पानी के छोटे-से प्रवाह के पास उन्होंने हरी दूभ देखा तो सोचने लगे, ‘इस दूभ का जीवन पानी है, पानी से ही वह हरी और प्रभृति रहती है। हमारे लिए जीवन महाराज ही थे, ते तो अब चल बसे!’ विचारों का यह प्रवाह अचानक अटक गया और वे मूर्तिवश होकर उसी खेत में गिर पड़े। हाथ में रही तुम्बी दूर जा गिरी।
उसी पल श्रीहरि ने दिव्य रूप में प्रकट होकर स्वामी का हाथ थाम लिया। उनको जाग्रत करके कहा, ‘अरे, यह क्या! रह गया हूँ? मैं तो आप में निरंतर रहा हूँ, निरंतर रहा हूँ, निरंतर रहा हूँ।’ इतना कहकर, श्रीहरि अपने प्रकटत्व का रहस्य बताकर अदृश्य हो गये। आज गुणातीत परंपरा के द्वारा श्रीहरि इस धरती पर प्रकट हैं।
भगवान स्वामिनारायण का पृथ्वी पर निवास:

<table>
<thead>
<tr>
<th>वर्ष</th>
<th>मास</th>
<th>दिन</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>1837</td>
<td>11</td>
<td>3</td>
</tr>
<tr>
<td>1849</td>
<td>7</td>
<td>11</td>
</tr>
<tr>
<td>1856</td>
<td>10</td>
<td>6</td>
</tr>
<tr>
<td>1857</td>
<td>12</td>
<td>16</td>
</tr>
<tr>
<td>1858</td>
<td>28</td>
<td>27</td>
</tr>
</tbody>
</table>

इस पृथ्वी पर निवास

49 2 1

ग्रन्थसूचि:

1. श्रीजी के प्रसादीपत्र 2. श्रीहरिलालामुत 3. श्री हरिचरित्रामृतसागर 4. भक्तचिन्तामणि 5. श्रीहरिचरित्रचिन्तामणि 6. अक्षरानंद स्वामी की बातें 7. भायामानन्द स्वामी की बातें 8. श्रीस्वामिनारायण चरित्र, 9. स्वामिनारायण सम्प्रदाय का सचित्र इतिहास 10. गुणातीतान्तर स्वामी का जीवनचरित्र - ह.म. देवे 11. स्वामी सहजानन्द - कि. घ. मशरूवाला 12. श्री स्वामिनारायण - एम. सी. पारेख।